चतुर्थ अध्याय

4.1 चाय जनगोष्ठी की जीवन-शैली

समय के प्रवाह के साथ मानव जीवन के दैनिक क्रियाकलापों, तौर-तरीकों में परिवर्तन स्वाभाविक है। मानव जीवन की तमाम गतिवाधियाँ भौगोलिक परिवेश, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक कारकों से प्रभावित और परिचालित होती हैं। हालिया स्थिति तो यह है कि कुछ लोग पश्चिम की संस्कृति को आधुनिकता का पर्याय मानने लगे हैं। अपनी सभ्यता और संस्कृति को लेकर हेय दृष्टि रखने वाले तथाकथित आधुनिक लोग पश्चिमी संस्कृति के अंधानुकरण को ही उच्च जीवन शैली का मानदंड समझ बैठे हैं। सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की जड़ों को बाजारवाद ने अधिक मजबूत किया है। ऐसे में शहरी सभ्यता के मुकाबले ग्रामीण अंचलों की जीवन शैली भारतीय सभ्यता और लोक संस्कृति को संजोये हुए है। वैसे तो प्रत्येक जाति और जनजाति की अपनी विशिष्ट जीवन शैली है। लेकिन जिस समुदाय में अलग-अलग प्रांतों के भिन्न भाषा-भाषी और संस्कृति वाले लोगों का समन्वय हुआ हो उसकी जीवन शैली की विशिष्टता अप्रतिम है। ध्यातव्य है कि भारत के अलग-अलग राज्यों से असम के चाय बागानों में श्रम कराने हेतु लाये गये दरिद्र, निरक्षर, बेरोजगार श्रमिकों के समन्वित समाज को ही 'चाय जनगोष्ठी' की संज्ञा प्राप्त है। जाहिर-सी बात है कि रोजगार और तमाम तरह की सुविधाओं से परिपूर्ण जीवन की प्रत्याशा ने इन श्रमिकों को असम की ओर आकर्षित किया। परंतु असम आने के बाद ये श्रमिक चाय बागानों में दिन-रात मजदूरी करने तथा दमित-शोषित जीवन जीने को अभिसप्त थे। लगभग सौ से भी अधिक वर्ष पुराने इनके इतिहास को टटोलने पर इनके संघर्षपूर्ण जीवन की सहज प्रतीति हो जाती है। इन चाय श्रमिकों में भी दो श्रेणी के लोग हैं। पहले वे जो सीधे-सीधे चाय उद्योग से जुड़कर जीविकोपार्जन कर रहे हैं। और, दूसरे वे जो इस पेशे को छोड़ चुके हैं। इन्हें प्राक्तन चाह मजदूर कहकर अभिहित किया गया है। चाय जनगोष्ठी में प्राक्तन चाय मजदूरों की तुलना में बागानों में काम करने वाले श्रमिकों की स्थिति अधिक कष्टप्रद है। इनके रहन-सहन, सामाजिक मूल्य आदि सभी में अंतर है। चाय श्रमिक बागानों द्वारा बसाये गये *लेबर लाइन्स* की झुग्गी-झोपड़ी में गुजारा करते हैं। लेकिन प्राक्तन चाय श्रमिक अपने आर्थिक सामर्थ्य के अनुरूप पक्के घर बनाकर रहते हैं। कुछ तो लेबर लाइन्स को छोड़कर विकसित अंचलों की ओर अग्रसर हो रहे हैं। अतः जब बात चाय जनगोष्ठी की जीवन शैली की हो रही है तो यहाँ बागानों में श्रमरत मजदूरों को केंद्र में रखना अपेक्षित है।

चाय श्रमिक अपनी दिनचर्या का अधिकांशतः समय प्रकृति के साहचर्य में यानी चाय के बागानों में व्यतीत करते हैं। ये अत्यंत सहज-सरल प्रवृत्ति के होते हैं। इनका आचार-व्यवहार और जीवन परंपरागत नियमों से चलता है। चाय जनगोष्ठी के वे श्रमिक जो आज भी चाय के बागानों में मजदूरी करते आ रहे हैं उनकी जीवन शैली में सूर्योदय से लेकर दिन की समाप्ति तक भाग-दौड़ और जद्दोजहद चलती रहती है। सुबह की पहली किरण के साथ चाय जनगोष्ठी के पुरुष और महिला श्रमिक घर के सभी काम-काज निपटाकर बागान पहुँचने की तैयारी में जुट जाते हैं। बागानों में बिगुल बजते ही उन्हें वहाँ मौजूद रहना पड़ता है। अन्यथा दिहाड़ी में कटौती होती है। इनमें महिला श्रमिकों को देखें तो ये सुबह बागान जाने से पूर्व अपने परिवार और बच्चों के प्रति सारी जिम्मेदारियों का निर्वहन कर बागानों की ओर निकल पड़ती हैं। 'एटि कलि दुटि पात' अर्थात् चाय की कोमल कली तथा कचनार पत्ती को तोड़ने में ये महिलाएँ अथक परिश्रम करती हैं। यह बात उल्लेख योग्य है कि चाय बागानों में कोमल पत्तियों को तोड़ने का काम केवल महिला श्रमिक ही करती हैं। धूप, बरसात आदि सभी मौसम में ये महिलाएँ कर्म के प्रति अपनी निष्ठा दर्शाती हैं। ऐसा कहा जाता है कि चाय श्रमिकों के बच्चे जन्म के पूर्व ही श्रमिक बन जाते हैं। आशय यह है कि चाय श्रमिक महिलाएँ गर्भवस्था के दौरान भी बागानों में काम करती हैं। शिशु के जन्म के पश्चात् बच्चे को पीठ में बाँधकर पत्ती तोड़ती महिलाओं की छवि उनके संघर्षपूर्ण जीवन के साक्ष्य हैं। विडंबना तो यह है कि नियत समय में निश्चित परिमाण में पत्तियाँ न तोड़ने पर इनके दिहाड़ी में कटौती की जाती है। एक तो वैसे ही इन महिला श्रमिकों को सबसे कम वेतन मिलता है। उसमें भी यदि वेतन में कटौती की जाए तो यह जले पर नमक छिड़कने जैसी बात है। चाय जनगोष्ठी में प्रचलित गीतों के विभिन्न प्रसंगों में चाय उद्योग प्रशासन की नीतियों तथा उसके क्रियान्वयन से संबंधित कटु सत्य का बराबर आभास होता है। पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

" चल चंपा चल पैदल-पैदल
एक नंबर बागाने पाता तुला काम रे
बाबू साहब देख ली, घुराई दिबे पोट ले
नाई पाबि पूरा तलब रे, नाई पाबि पूरा तलब रे

x x x

हामदेर देशेर चाय पातार बिदेशे बोड़ो नाम रे

सेहो नाम राखतेले कोरिला केतो काम रे

निजेर-निजेर बाही धोर, दौड़ा-दौड़ी काम कोर

सेइटा जीबोन लागे रे"[1]

उपर्युक्त गीत की पंक्तियों में चाय श्रमिकों के जीवन की तमाम शर्तों व नियमों की अभिव्यक्ति मिली है। इस गीत में महिला श्रमिकों की कार्य के प्रति तत्परता और उनकी मनोदशा का यथोचित चित्रण प्रस्तुत किया गया है। गीत की ये पंक्तियाँ इस बात की साक्षी हैं कि चाय बागानों में श्रमरत महिलाएँ और युवतियाँ अपने एक दिन की दिहाड़ी के लिए कितनी सोचनीय स्थिति से गुजरती हैं। प्रातः काल *बिंगुल* (बिगुल) यानी चाय उद्योग की सिटी से इनके दैनिक जीवन की शुरुआत हो जाती है। प्रतिदिन नियत वजन से तनिक भी पत्तियाँ कम हों, तो पूरा वेतन नहीं मिलता। इसीलिए ये महिलाएँ तेजी से कार्यस्थल पर पहुँचकर अपने काम में रम जाती हैं। असम के चाय की देश-विदेश में माँग और चर्चा के पीछे इन्हीं चाय श्रमिकों की कड़ी मेहनत तथा भागदौड़ शामिल है। यह तो हुई महिला श्रमिकों की बात। लेकिन पुरुष श्रमिकों की हालत भी इनसे बहुत उत्कृष्ट कोटि की नहीं है। चाय बागानों में पौधों की छँटाई (कलम-काटा) का काम पुरुष श्रमिक करते हैं। इसके अलावा कीटनाशक-पानी का छिड़काव भी ये श्रमिक ही करते हैं। ये सभी दिहाड़ी मजदूर की श्रेणी में आते हैं। सरदार, बाबू, साहब आदि चाय उद्योग के बड़े तबके के लोग तमाम नीति-नियमों के अनुरूप इन श्रमिकों से काम करवाते हैं। मनोनुकूल काम न होने पर वेतन में कटौती के अतिरिक्त गाली-गलौज, मार-पीट जैसी अमानवीय प्रताड़ना से इन्हें जूझना पड़ता है। इसीलिए इन श्रमिकों के जीवन में बागान की सिटी खुदा के किसी फरमान से कम नहीं है। इस मानसिक पीड़ा तथा प्रताड़ना से संबंधित चाय श्रमिक समाज में प्रचलित गीत की ये पक्तियाँ ग़ौर करने योग्य हैं-

"सरदार बोले काम-काम

बाबू बोले ठीका काम

कलम-काटा नाई कोरलेसे

साहाब थीने गाली खाम

सोबाई दिबे लंबा-चौड़ा गाली

ए मिनि कोर देवा मोके ताड़ा-ताड़ी

बिंगुल मारिलो, चौकीदार डाकिलो

काम जाते होबे मोके बाड़ा देरी"[2]

भाग-दौड़ भरी दिनचर्या में तमाम शर्तों के बनिस्पत चाय श्रमिक किसी तरह अपना पूरा वेतन पाने के लिए आशान्वित रहते हैं। प्रारंभिक समय में चाय बागानों में श्रमिकों को 'लुनिया रुधीर' अर्थात् सिर्फ नमक

की चाय दी जाती थी। असम की पृष्ठभूमि को लेकर लिखे गये गीत, कहानी आदि इस बात के साक्ष्य हैं कि चाय श्रमिकों को भूने हुए चावल और चाय के नाम पर प्रबंधन द्वारा मुहैया कराये गए *'लुनिया रुधीर'* पर आश्रित रहना पड़ता था। "चाल भूंजा चा-पानी रखिल पराण रे"[3] अक्सर कई जगह इस प्रकार की पंक्तियाँ देखने-सुनने को मिल जाती हैं। आज परिवर्तन मात्र इस स्तर पर दिखायी देता है कि भूने हुए चावल के बदले चाय उद्योग से न्यूनतम दरों पर इन्हें चावल, आटा, चायपत्ती आदि उपलब्ध कराया जाता है। हाँ, यह बात और है कि खाद्य सामग्रियों की गुणवत्ता के साथ काफी समझौता करना पड़ता है। कुलमिलाकर इनके घर-द्वार, रहन-सहन, खान-पान के तरीके से चाय श्रमिकों की आर्थिक दशा का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। प्रारंभिक समय से लेकर आज भी इनकी आर्थिक स्थिति के कमजोर होने के पीछे एक प्रमुख कारण है अशिक्षा। अज्ञानता के चलते इनमें जागरूकता के अभाव के साथ ही प्रतिरोध में भी कमी देखी जाती है। यही नहीं, इस समाज में अंधविश्वास का तिमिर इस कदर व्याप्त है कि प्रगति का कोई मार्ग सहजता से दिखाई नहीं देता। रोजमर्रा के छोटे-मोटे काम, रीति-रिवाज आदि से संबंधित अंधविश्वास के अतिरिक्त तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत, डायन आदि पर विश्वास होना इनकी जीवन-दृष्टि को संकुचित कर देता है। इस कारण इक्कीसवीं सदी में भी यह समाज सदियों पीछे ठहरता है। इस समाज में किसी महिला को केवल संदेह के आधार पर समाज में होने वाली अप्रिय घटनाओं का कारण माना जाता है तथा उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। केवल इतना ही नहीं किसी शुभ अवसर पर उसे शामिल न होने देना, घर बुलाकर धोखे से जलपान अथवा देशी शराब में मल-मूत्र मिलाकर उसे पिलाने जैसा जघन्य अपराध आज भी प्रचलित है। इसके पीछे यह धारणा व्याप्त है कि महिला द्वारा किये गये टोटके का कोई असर नहीं होगा। आज भी किसी व्यक्ति के रोगग्रस्त होने पर झाड़-फूँक, ताबीज़ से इलाज को वरीयता दी जाती है। तेज बुखार होने पर शरीर में भूत का वास समझा जाता है। इसीलिए चाय जनगोष्ठी में तंत्र-मंत्र को खास प्राथमिकता दी जाती है। इनके मंत्रों से इस बात का अंदाजा लगाया जा सकता है कि ये कामरूप माई, चंडी देवी, काली देवी का स्मरण करते हुए उनसे रोगमुक्ति कामना करते हैं। ऐसे तंत्रोपचार का परिणाम यह होता है कि सही उपचार की कमी से व्यक्ति काल-कवलित हो जाता है। तमाम तरह के अवैज्ञानिक तर्कों तथा विश्वासों के फलस्वरूप विभिन्न पर्व-त्योहारों के अतिरिक्त नाना अवसरों पर बलि देने की प्रथा आज भी प्रचलित है। चाय जनगोष्ठी के लोग देवी-देवताओं, भूत-प्रेत आदि को संतुष्ट करने के लिए कबूतर, मुर्गा/मुर्गी, बकरे की बलि देकर उसके माँस को स्वयं भी खाते हैं। कई बार ऐसे अवसरों पर घरेलू शराब अर्थात् हाड़िया का भी सेवन किया जाता है। सर्वविदित है कि चाय जनगोष्ठी में पर्व-त्योहार तथा अन्य सांस्कृतिक अनुष्ठानों में न केवल

पुरुष बल्कि महिलाएँ भी इस देशी शराब का सेवन करती हैं। जैसे हर्ष के क्षणों में झुमुर नृत्य की शोभा देखते ही बनती है। ठीक उसी तरह ऐसे समय में ये हाड़िया पीकर अपने उत्साह और प्रसन्नता को दर्शाते हैं। दरअसल, चाय जनगोष्ठी के दैनिक खाद्य-संस्कृति में हाड़िया भी शामिल है। चाय बागानों में कठिन परिश्रम के बाद थकान को मिटाने के लिए इस नशे के अलावा अन्य कोई विकल्प इन्हें नहीं सूझता। अतः बागानों में श्रमरत लगभग सभी चाय श्रमिक अपनी वेदना, कष्ट, प्रताड़ना, थकान आदि को भूलने के लिए नशीले पदार्थों का सेवन कर अगले दिन पुनः उसी ढर्रे में ढलने के लिए स्वयं को तैयार करते हैं। यही कारण है कि इस समाज में घरेलू हिंसा पुरजोर है साथ ही इनकी समस्याओं का कोई स्थायी समाधान नहीं हो पाता।

चाय जनगोष्ठी में भिन्न जाति और आदिवासी समुदाय के समन्वय के कारण इस समाज में वर्ण व्यवस्था तो है परंतु इनकी संस्कृति अत्यंत विशिष्ट और समृद्ध है। बहुताधिक संस्कृतियों के सम्मिश्रण के कारण चाय जनगोष्ठी की संस्कृति बहुरंगी दुशाले-सी प्रतीत होती है। साल भर में मनाये जाने वाले विभिन्न पर्व-त्योहारों, रीति-रिवाजों, लोकाचार तथा मान्यताओं के द्वारा इनकी सांस्कृतिक विविधता का स्पष्ट आभास हो जाता है। चाय श्रमिकों की ईश्वर पर विशेष आस्था है। इनके समाज में करम पूजा, टूचु पूजा, मंगला पूजा, काली पूजा, दुर्गा पूजा, साँहराई पूजा, चारूल पूजा, सूर्याही पूजा, ग्राम पूजा आदि में अलग-अलग धार्मिक कर्मकांडों तथा रीतियों का अनुसरण कर ईश्वर से विशेष अनुकंपा की प्राप्ति हेतु प्रार्थना की जाती है। इन सभी पर्व-त्योहारों में चाय श्रमिकों की भक्ति भावना के अतिरिक्त प्रकृति के प्रति प्रेम और आस्था का भी परिचय मिलता है। चाय श्रमिक प्रकृति को देवी, सहचरी के रूप में आत्मसात करते हैं। इनके समाज में प्रचलित विविध साहित्यिक विधाओं जैसे गीत, कथा, उपन्यास तथा कहावतों-मुहावरों आदि में प्रकृति के विविध तत्वों के माध्यम से प्रेम तथा मानवीय मूल्यों को दर्शाया गया है। अधिकतर लघु कथाओं तथा उपन्यासों की पृष्ठभूमि चाय के बागानों को लेकर रची जाती है। इनके पात्र चाय श्रमिक जीवन के संघर्ष, कुंठा के बावजूद मानवीय प्रेम, ईश्वरीय प्रेम, प्रकृति प्रेम को जीवंत तरीके से रूपायित करते हैं। लोकगीतों में भी प्रकृति के विभिन्न तत्वों के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम तथा मानव प्रेम का आलंबन प्रस्तुत हुआ है। इस संदर्भ में गीत की कुछ पंक्तियाँ देख सकते हैं-

“आसिल मधुमास बिनंद उदास

बिबित बिश कसेग’ मधुमासे

आम जाम मंजुराई धधकी पलाश

नाचे धराधरिग’ साँवरे श्याम

बिबित बिश कसेग' मधुमासे"[4]

उपर्युक्त गीत की पंक्तियों में प्रेम की विरह दशा का वर्णन प्राकृतिक उपादानों के आधार पर किया गया है। मधुमास के आगमन से सभी पेड़-पौधे कचनार कलियों, पत्तियों से और अधिक जीवंत हो उठते हैं। चारों ओर के मनमोहक वातावरण को देखकर मानव मन में भी प्रेम की तीव्र उत्कंठा प्रारंभ हो जाती है। ऐसे में नवविवाहिता स्त्री का पति जब दो वक्त की रोटी के लिए दूर दराज चला जाता है तब वह अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में अत्यंत व्याकुल हो जाती है। श्रीकृष्ण के गोकुल से मथुरा चले जाने पर राधा समेत सभी गोपियाँ जिस विरहाग्नि में तपती रहती हैं ठीक उसी तरह अपने साँवरे श्याम से दूर रहने की विरह वेदना चाय जनगोष्ठी की नवविवाहिता महिला के लिए असह्य हो जाती है। ऐसे में आम का मुजराना, रक्त की लालिमा से परिपूर्ण पलाश के फूलों का खिलना देखकर उस महिला का प्रेमासक्त मन प्रिय मिलन को आतुर हो जाता है।

इसी क्रम में प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से प्रेमानुराग, मिलन भंग होने की आशंका, मिलन अथवा पुनर्मिलन आदि का भी यथास्थान चित्रण मिलता है। मानव प्रेम के संयोग पक्ष में मिलन को सदैव ही विशेष अभिव्यक्ति मिली है। उदाहरण के तौर पर चाय जनगोष्ठी में आषाढ़ के महीने में गाये जाने वाले आषाढ़िया झुमुर की पंक्तियाँ प्रेमी से मिलन की पराकाष्ठा को दर्शाती हैं। जिसमें प्रेयसी अपने प्रियतम से मिलन के बाद उसे इस तरह से अपने प्रेम व मोह पाश में बाँध लेना चाहती है कि उसका प्रियतम उसे छोड़कर अन्यत्र कहीं न जा सके। इसके लिए वह स्वयं को उस कोमल लता के रूप में प्रस्तुत करती है जो किसी विशाल वृक्ष को चारों ओर से घेरकर प्रेमपूर्वक उससे लिपटी रहती है। और, वृक्ष चाहकर भी उस लता के प्रेम-बंधन से मुक्त नहीं हो पाता। वृक्ष और लता के इस अप्रतिम प्रेम के जरिये मानव प्रेम की चरम स्थिति को दर्शाती गीत की पक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"तुमि तरु आमि लता

बाँधिये राखिब एथा

जाउ देखि कोथा जाबे

आमाक छाड़ियेहे"[5]

चाय जनगोष्ठी में विभिन्न प्राकृतिक तत्वों के माध्यम से प्रेम की अभिव्यक्ति वास्तव में प्रकृति प्रेम का सूचक है। इनके गीतों में नदी, पहाड़-पर्वत, चिड़ियाँ, फूल, चाय की हरी पत्तियाँ, बागानों के बीच लगे ऊँचे

शिरीष के पेड़ आदि उपादानों को चाय जनगोष्ठी के लोकगीतों में विशेष स्थान प्राप्त है। यही कारण है कि प्रकृति के इन उपादानों के प्रति चाय श्रमिकों की सूक्ष्म दृष्टि जीवन के प्रति नवीन संभावनाओं को जन्म देती है। तमाम तरह की कठिनाइयों, समस्याओं, कुंठा के बावजूद ये श्रमिकजन जीवन के मूल्यों को तरासते और आत्मसात करते हैं। यह इनके प्रकृति प्रेम और कवि हृदय का प्रमाण है कि वर्षा के जल से पृथ्वी का सराबोर हो जाने को प्रेम में समर्पण के भाव का सूचक मानते हैं। आकाश और धरती के ऐसे विराट प्रेम के माध्यम से समाज में प्रेम में उदारता के भाव का संदेश निहित है। जिस प्रकार आकाश अपने विराट हृदय का समस्त प्रेम वर्षा के जल के रूप में धरती पर न्योछावर कर देता है। दूसरी ओर धरती भी समस्त जल को आत्मसात कर लेती है। ठीक उसी प्रकार मानव प्रेम भी निज-पर, स्वार्थ की भावना से मुक्त अत्यंत उदार होना चाहिए। इस भाव से संपृक्त बारहमासा के गीत की ये पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

"आकाशे बरषे पानी
धरती लेंलई झकि,
नारी पुरुषके देखु....
देखु कैसन पीरिति"[6]

चाय श्रमिकों का गीत-संगीत से विशेष लगाव है। उनके यहाँ रागात्मकता को प्राथमिकता प्राप्त है। यह भी स्वीकार किया जाता है कि प्रारंभिक समय में जब इनके पूर्वज असम आये तो अपने साथ जन्मभूमि की स्मृतियाँ सहेज कर लाये थे। यात्रा के दौरान वाद्ययंत्रों को बजाते और गीत गाते हुए इस प्रत्याशा में असम आये कि इन्हें सभी प्रकार की तकलीफों से निवृत्ति मिल जाएगी। परंतु असम में विपरीत परिस्थितियों से रूबरू होने के बाद इनमें विरक्ति का भाव प्रकट होने लगा। अपनी भूमि को लौटने में असमर्थ चाय मजदूर मजबूरन चाय बागानों में श्रम करते हुए अपनी कुंठा और भग्नाशा को गीत-संगीत के माध्यम से अभिव्यक्त करने लगे। यही कारण है कि इस समाज में लोकगीत सर्वाधिक प्रचलित विधा है। लगभग सभी पर्व-त्योहारों, संस्कारगत अवसरों पर रीति-रिवाजों का पालन करते हुए बहुजन द्वारा लोकगीत गाये जाते हैं और खुले वातावरण में प्रकृति के बीच झुमुर नृत्य का भी विधान सुनिश्चित है। कुलमिलाकर कहा जाए तो चाय जनगोष्ठी की प्रत्येक सांस्कृतिक गतिविधि प्रकृति से जुड़ी हुई है। चाहे वह करम पूजा में *करम डाल* (कदंब की शाखा) की पूजा हो या फिर फूल, जीव-जंतु की पूजा हो। ध्यातव्य है कि चाय जनगोष्ठी में फूलों की पूजा यानी कि प्रकृति के रंग-बिरंगे रूप की पूजा के तौर पर चारूल पर्व का आयोजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त साँहराई पूजा में गाय

की पूजा की जाती है और साल भर उनसे खेत-खलिहानों में कठोर परिश्रम करवाने के लिए क्षमा याचना भी की जाती है। अग्नि और सूर्य की पूजा ऊर्जा स्रोत के रूप में की जाती है। विभिन्न धार्मिक और संस्कारगत आयोजनों पर ताम्बुल (कच्ची सुपारी)-पान से सभी का स्वागत करना, हल्दी, चावल, दूब, केले के पत्ते आदि का पूजा की अनिवार्य सामग्री के रूप में व्यवहृत करना इस समाज में प्रकृति के सर्वोच्च स्थान को दर्शाता है। यहाँ तक कि इस समाज में प्रचलित लोक कलाओं में काठ, बाँस, बेंत (पूर्वोत्तर की एक विशेष वनस्पति) आदि का विशेष रूप से प्रयोग होता है। इस तरह चाय श्रमिक अपने कर्मस्थल से लेकर अपनी दिनचर्या की सामान्य गतिविधियों में भी प्रकृति से सीधे तौर पर जुड़े हुए हैं। इनका जीवन प्रकृति के पूर्ण साहचर्य में व्यतीत होता है। इसी कारण यह समाज 'इको फ्रेंडली' समाज है।

लोक चिकित्सा

मानव सभ्यता में प्रारंभ से ही रोग-व्याधियों के निराकरण हेतु तरह-तरह के उपायों अथवा चिकित्सा पद्धतियों का सहारा लिया जाता है। क्षेत्र विशेष, समाज, शिक्षा आदि विभिन्न कारकों के बनिस्पत इन चिकित्सा पद्धियों में परिवर्तन वाज़िब है। पुराण, वेद (अथर्ववेद), रामायण, महाभारत आदि में चिकित्सा के विविध आयामों का उल्लेख मिलता है। दरअसल, लोक चिकित्सा कहने से किसी भी समाज में प्रचलित औषधि प्रयोग के कौशलों तथा रोगों से निजात पाने की प्रक्रियाओं का बोध होता है। लोक चिकित्सा पद्धति के द्वारा रोगों के प्रति आम जनमानस की प्रतिरोधक चिंता, लोकविश्वास, मान्यताएँ, लोकाचार का आभास मिलता है। यही कारण है कि युगों से चली आ रही मान्यताओं, विश्वासों, लोक चिंतन से लोक चिकित्सा सृजित तथा पुनर्सृजित होती रहती है। बतौर उदाहरण प्राकृतिक तत्वों से चिकित्सा, मंत्र चिकित्सा, यज्ञ चिकित्सा आदि को देखा जा सकता है। चाय जनगोष्ठी में प्राचीन काल से चिकित्सा की इन पद्धतियों का खूब प्रचलन है। इस बात का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि चाय श्रमिक समाज में अधिकांश लोग अशिक्षित तथा कुछ ही लोग अल्पशिक्षित तथा शिक्षित वर्ग के हैं। इसीलिए इस समाज में आज भी चिकित्सा की अधुनातन पद्धतियों के बजाय तंत्र-मंत्र, झाड़-फूँक पर विश्वास किया जाता है। चाय जनगोष्ठी में अंचल, जाति-समुदाय, धर्म के आधार पर लोक चिकित्सा की पद्धतियों में भिन्नता है। इस समाज में प्राकृतिक लोक चिकित्सा तथा तंत्र-मंत्र की चिकित्सा पद्धति पर अधिक बल दिया जाता है। हालाँकि प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति से इलाज होना तो कुछ हद तक तर्कसंगत है लेकिन तंत्र-मंत्र, देवी-देवताओं को गोहराकर (आवाहन करके) रोगमुक्त होने की

प्रत्याशा इन्हें काल की ग्रास से नहीं बचा पाती। चाय जनगोष्ठी में प्रचलित लोक चिकित्सा की अलग-अलग पद्धतियों व प्रक्रियाओं का विवरण कुछ इस प्रकार है-

* *प्राकृतिक लोक चिकित्सा प्रणाली*

इसके अंतर्गत प्रकृति के विभिन्न उपादानों जैसे पेड़-पौधे, फूल, बीज, जीव-जंतु, कीट-पतंग से प्राप्त सामग्री, मिट्टी, खनिज संपदा आदि से रोगों का इलाज किया जाता है। वैसे तो बीमारियों के अनुसार जंगली जड़ी-बूटियों को खिलाकर रोगमुक्त करने का प्रयास किया जाता है लेकिन कई बार पेड़ की जड़, पशु की हड्डी, चमड़ी, नाखून आदि चीजों को ताबीज़ में भरकर रोगी को पहनाने की परंपरा का भी प्रचलन है। चाय जनगोष्ठी में लोक चिकित्सा हेतु प्रयुक्त वनौषधियों में नीम, तुलसी, मानिमुनि, कपौफूल, गेंदा फूल के पौधे की पत्तियाँ, गुन्धुवा पात (एक विशेष औषधीय पत्ता जिससे अलग किस्म की गंध निकलती है) शेफाली फूल के पौधे की कोमल पत्तियाँ आदि प्रमुख हैं। इनमें नीम की शाखा, जड़, पत्तियाँ आदि चर्मरोग, मधुमेह, मलेरिया तथा बैक्टेरिया के नाश हेतु उपयुक्त हैं। बुखार के बाद शारीरिक कमजोरी से निजात पाने के लिए नीम का फूल खिलाया जाता है। इसके अलावा किसी व्यक्ति को चेचक होने पर नीम की पत्तियों के साथ हल्दी और कटहल के छिलके को पानी में उबालकर उससे स्नान कराया जाता है। इसी तरह से तुलसी को चाय जनगोष्ठी में सर्वश्रेष्ठ और पवित्र वनस्पति माना गया है। विभिन्न धार्मिक गतिविधियों में तुलसी एक अनिवार्य पूजन सामग्री है। खाँसी, बदहजमी, चर्मरोग के निराकरण तथा स्मरण-शक्ति की वृद्धि में अत्यंत सहायक है। तुलसी के पत्ते और बीज के सेवन से नवजात शिशु की माता के दूध में भी वृद्धि होती है। असम की विशेष औषधीय गुणों वाली वनस्पति है मानिमुनि और कपौफूल। इसमें मानिमुनि लता की तरह ही है। इसकी पत्तियाँ गोलाकार होती हैं। पथरी रोग में, किडनी, यकृत, मूत्राशय, रक्त आदि को परिष्कृत रखने हेतु प्रातः काल खाली पेट में इस पत्ती को खाया जाता है। पाचन शक्ति, स्मरण शक्ति, रक्तचाप को संतुलित रखने में भी ये पत्तियाँ सहायक होती हैं। कपौफूल वसंत के महीने में (बिहू पर्व के समय) खिलता है। यह एक तरह का परजीवी वनस्पति है। बिहू नृत्य के दौरान युवतियाँ अपने बालों में इसे लगाती हैं। इस फूल की खुशबू और सौंदर्य सहज ही किसी को भी आकर्षित कर लेती हैं। कपौफूल में औषधीय गुण व्याप्त है। कपौफूल की शिराओं को पीसकर पीने से हड्डी अथवा जोड़ों के दर्द से राहत मिलती है। चाय श्रमिक कान के दर्द में भी कपौफूल को पीसकर इसके रस को कान में डालते हैं। चाय बागानों या खेतों में काम करते हुए, शिकार के दौरान अथवा बच्चों के शरीर के किसी

अंग में कट-छिल जाने पर गेंदे फूल की पत्तियों को तुरंत लगाते हैं। कुछ लोग सरसों के तेल के साथ हल्दी या चूने को गर्म करके भी लगाते हैं। इससे दर्द कम हो जाता है और जल्दी ही घाव भी भर जाता है। इसी तरह सर्प-दंश से पीड़ित व्यक्ति के उस अंग पर *गुमुनी लता* (एक विशेष प्रकार की औषधीय लता) को पीसकर लगाते हैं। इससे साँप का जहर निष्क्रिय हो जाता है। अत्यधिक बलगम होने अथवा बलगम वाली खाँसी के कारण सीने में दर्द होने पर हल्दी, काली मिर्च, लहसुन आदि को पीसकर रोगी के कष्ट का निवारण किया जाता है। लूज मोशन की समस्या होने पर नींबू का रस, अमरूद, भीमकल (असम में पाये जाने वाले केले की एक विशेष प्रजाति) आदि खिलाने पर जल्दी ही राहत मिलती है और रोगग्रस्त व्यक्ति के शरीर में पानी की कमी भी नहीं होती।

चाय जनगोष्ठी में निमोनिया, अस्थमा तथा पीलिया (जौंडिस) के रोगी का भी आसपास के प्राकृतिक तत्वों से उपचार किया जाता है। जैसे- किसी व्यक्ति को निमोनिया अथवा साँस लेने में अधिक समस्या होने पर व्यक्ति को साही (porcupine) की नाभि, रेशम के कीड़े का लार्वा, नींबू की तीन पत्तियाँ, दूब, पाँच लौंग, काली मिर्च के तीन दाने, चावल को एक साथ पीसकर उसकी छोटी-छोटी गोलियाँ बनायी जाती हैं। इसकी ग्यारह गोलियों का तीन अथवा सात दिनों तक रोगी को नियमित सेवन करना होता है। इसी प्रकार पीलिया रोग से ग्रस्त व्यक्ति को कच्चे दूध और सीजू वृक्ष की तीन कोमल टहनियों को एक-एक कर प्रतिदिन सुबह खाली पेट में पीसकर खिलाने से इस रोग से मुक्ति मिल जाती है। महिलाओं की माहवारी और प्रसवजन्य समस्याओं से निवृति हेतु भी घरेलू उपचार मौजूद हैं। माहवारी के दौरान होने वाली पीड़ा से राहत के लिए *चेंग्मारी* नामक औषधीय पौधे की लगभग तीन इंच की कोमल पत्तियों सहित शाखा को पीसकर उसमें पाँच काली मिर्च के दाने को मिलाकर तीन दिनों तक ऋतुस्रावित महिला/युवती को खिलाया जाता है। प्रसव पीड़ा को कम करने में भी काली मिर्च काफी असरदार होती है। शरीर के किसी अंग में दर्द होने पर *अकवन* के पत्ते पर सरसों का तेल लगाकर उससे सिंकाई की जाती है। 'मधुमेह बीमारी के लिए *नयनतरा, घिलोई* (गिलोय) की लता और पत्तियों को प्रातः काल खाली पेट में चबाकर खाते हैं। पथरी की समस्या से निजात पाने के लिए *दुपरटेंगा* की पत्तियों को पीस कर खाते हैं। निमोनिया से निजात पाने के लिए चाय जनगोष्ठी में *हरु कुट्मा* के पत्ते अथवा फल, *सागल सिंगिया* की जड़, *तेजमोरी* की जड़, काली मिर्च, अदरक, *तिता पात* को एकसाथ पीसकर तीन दिनों तक रोगी को खिलाते हैं।'[7] 'धातु रोग से ग्रसित होने पर *जमलाखुटी* नामक वनस्पति की जड़ को पीसकर उसे मिस्री के साथ भिगोकर रात भर छोड़ दिया जाता हैं। तदुपरांत उसे छानकर सुबह खाली पेट में पाँच दिन

तक सेवन करने से यह रोग ठीक हो जाता है।'[8] आदि विभिन्न रोगों के लिए चाय श्रमिक समाज में नाना वनस्पतियों का नियमित सेवन कर उसे ठीक करने का प्रयास किया जाता है।

* *तंत्र-मंत्र की लोक चिकित्सा प्रणाली*

प्राचीन काल से ही तंत्र साधना, मंत्रोच्चार के माध्यम से रोगोपचार के अनेक किस्से हम सुनते आये हैं। आज भी न केवल चाय जनगोष्ठी में अपितु कई ऐसे समाज हैं जिनमें चिकित्सा की ये पद्धतियाँ प्रचलित हैं। विशेषकर चाय जनगोष्ठी में भूत-प्रेत से बचाव के लिए, नज़र दोष, वशीकरण, डायन आदि से बचने के लिए तंत्र-मंत्र की सहायता ली जाती है। प्रारंभ में ही इस बात पर चर्चा की जा चुकी है कि चाय जनगोष्ठी में ज्वर, भ्रमदोष, कमजोरी आदि को भूत-प्रेत का प्रभाव माना जाता है। इसीलिए मंत्रोच्चार तथा अन्य तंत्र साधना से इससे निजात पाने की चेष्टा की जाती है। इसके लिए प्राकृतिक तत्वों से चिकित्सा के अलावा विशिष्ट देवी-देवताओं का स्मरण करते हुए मंत्र का उच्चारण किया जाता है। खासकर चाय जनगोष्ठी में आषाढ़-सावन के महीने में आयोजित ग्राम पूजा में तंत्र-मंत्र की प्रसिद्धि तथा समाज में इसकी प्रासंगिकता की पुष्टि हो जाती है। ग्राम पूजा में सभी प्रकार के अमंगल, दोष, नकारात्मक शक्तियों, महामारी आदि से रक्षा हेतु मंत्रबद्ध धागे से गाँव की सीमा को बाँध दिया जाता है। ऐसा करने से कोई भी नकारात्मक शक्ति अथवा महामारी गाँव में प्रवेश नहीं कर पाती। इसके बाद बलि का भी विधान प्रचलित है। ऐसा जनविश्वास प्रचलित है कि बलि के माँस को खाने वाले व्यक्ति पर किसी भी नकारात्मक शक्ति का प्रभाव क्षीण हो जाता है। वह व्यक्ति अमंगल दोष तथा महामारी से भी निवृत्त हो जाता है। इसी तरह से टूचु पूजा का आयोजन चर्मरोग से मुक्ति के लिए किया जाता है। डायन के प्रभाव, वशीकरण आदि कुसंस्कारों के शमन हेतु तंत्र साधना से सिद्ध ताबीज़ पहनाया जाता है अथवा किसी खाद्य सामग्री को अभिमंत्रित कर खिलाने की प्रथा भी प्रचलित है। कुलमिलाकर यह मूलतः अंधविश्वास का प्रचार है। शिक्षा की कमी के कारण इस समाज में आधुनिक चिकित्सा के बजाय तंत्र-मंत्र, झाड़-फूँक, वशीकरण आदि की प्रासंगिकता बनी हुई है।

चाय जनगोष्ठी में अलग-अलग बीमारियों के लिए तांत्रिक भिन्न-भिन्न मंत्रों का उच्चारण करता है। ये मंत्र अलग-अलग तांत्रिकों के अनुसार भी पृथक हो सकते हैं। जैसे तेज बुखार होने पर तांत्रिक मुट्ठी भर सरसों हाथ में लेकर व्यक्ति के चारों ओर घुमाते हुए मंत्रोच्चार करता है। ध्वनित मंत्र दृष्टव्य है-

"ज्वर ज्वर ज्वर

दिन ज्वर रात ज्वर

काय ज्वर

गा ज्वर भेलकी ज्वर

ई ज्वर कि जारे

गुरु जारे

गुरु इच्छाई मे जारु

ईश्वर दोहाई मनुष्य जारे.....”[9]

पेट दर्द अथवा किसी भी दर्द के लिए मंत्र-

“कतरी कतरी सुदर्शन कतरी

तुई कतरी थिलू काहाँ

सात समुंदर लंका जाए

मोर सुमरटा आइलो धाँय

जाहाँ के पेसबो ताहाँ के जाबि

जाबि जे छाती अंते ढुकबि

भूत काट, डाहिन काट, जुगनी काट

बाण काट, सिंगार काट, नासन काट

पांगन काट, हावा काट, बातास काट

छेद काट, भेद काट, चुंकरिया काट

पितासि काट, घरसिरि काट, दुवारसिरि काट

जंतर काट, मंतर काट, नजर काट, बजर काट

के काटे? गुरु काटे

गुरु आइज्ञा बीर हनुमानेर दोहाई गुरु”[10]

(हाथ में थोड़ा-सा चावल लेकर तीन बार यह मंत्र पढ़ते हुए छिड़क दिया जाता है।)

इसी तरह से किसी महिला का गर्भपात हो जाने पर किसी ग्लास अथवा लोटे में पानी भरकर उसमें एक चाकू रख दिया जाता है। तदुपरांत तांत्रिक अपने सिद्ध मंत्र का उच्चारण प्रारंभ कर देता है। और अंत में उस मंत्रसिद्ध जल को महिला को पिलाया जाता है। उच्चरित मंत्र प्रस्तुत है-

"विश्वचंता जा दि की कर्ता

श्वेत दूधधारी तिनधारी

शिरहे, मकुट नेही, मकुट ने शिर नेही

चौ नारी, पार उतारी

कबिर की जन जीरा छवा लाख बिषला

माटि करबे दायी"[11]

इस समाज में किसी व्यक्ति के भ्रमित होने या अचानक शारीरिक रूप से कमजोर होने पर भूत-प्रेत अथवा डायन की कुदृष्टि का प्रभाव समझा जाता है। इसके निवारण हेतु हिरण की हड्डी, चील की हड्डी, मंदिर की मिट्टी, लाल चंदन, अर्जुन के पेड़ की लकड़ी आदि सामग्री से उसकी झाड़-फूँक की जाती है। शरीर के किसी अंग में दर्द होने पर काले अथवा नीले धागे में तांत्रिक द्वारा दिये गये ताबीज़ को शरीर के उस हिस्से में बाँध दिया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ चाय श्रमिकों के समाज में जंगली जड़ी-बूटियों से बीमारियों के इलाज का प्रावधान है तो वहीं तंत्र-मंत्र, झाड़-फूँक पर भी इनका अतिशय विश्वास कायम है। अशिक्षा, अज्ञानता और अंधविश्वास पर इनकी प्रबल आस्था इनके पिछड़ेपन तथा असामयिक या अकाल मृत्यु का कारण बन जाती है।

संदर्भ सूची-

1. https://youtu.be/_vu2IDdyDI (दिनांक: 12.07.2022, समय: अपराह्न 3.30 बजे)
2. https://youtu.be/BIUMfRHTt6k (दिनांक: 12.07.2022, समय: संध्या 6.36 बजे)
3. डिम्बेश्वर तासा, चाह जनगोष्ठीर समाज संस्कृति, पृष्ठ संख्या. 75
4. सुशील कुर्मी, नारायण घटवार रचनावली, पृष्ठ संख्या. 116-117
5. शुकदेव अधिकारी, चाह जनगोष्ठीर लोकगीत लोक परंपरा आरु उत्सवर रूपरेखा, पृष्ठ संख्या. 93
6. सुशील कुर्मी, मेघराज कर्मकार रचनावली, पृष्ठ संख्या. 196
7. तथ्यदाता: श्री लवखन कुर्मी, हिलिखागुड़ी गाँव, तिनसुकिया (दिनांक: 13.11.2022)
8. तथ्यदाता: श्री निर्मल घटवार, हिलिखागुड़ी गाँव, तिनसुकिया (दिनांक: 13.11.2022)
9. अंशुमान दास, असमर जनगोष्ठीय लोक-चिकित्सा, पृष्ठ संख्या. 285
10. तथ्यदाता: श्री सुरेश घटवार, हिलिखागुड़ी गाँव, तिनसुकिया (दिनांक: 13.11.2022)
11. अंशुमान दास, असमर जनगोष्ठीय लोक-चिकित्सा, पृष्ठ संख्या. 286

4.2 चाय जनगोष्ठी के विभिन्न पर्व-त्योहार

किसी भी समाज में मनाये जाने वाले विभिन्न पर्व-त्योहारों के अंतर्गत प्रचलित रीति-रिवाजों से उस समाज की सांस्कृतिक विशिष्टता दिखायी देती है। असम की चाय जनगोष्ठी में प्रचलित नाना परंपरागत उत्सवादि पर ग़ौर करने पर इस श्रमिक समाज के वृहत सांस्कृतिक दुशाले का बोध होता है जो नाना भाषा-भाषी और सांस्कृतिक वैभिन्नता से सम्बद्ध लोगों को अपने अंदर समेटे हुए है। भारतवर्ष के अमूमन सभी जातिगत समुदायों की यह सांस्कृतिक विशिष्टता है कि यहाँ साल भर वैदिक नीति-नियमों का अनुसरण करते हुए विभिन्न पूजा-पाठ, पर्व-त्योहारों का आयोजन होता रहता है। ऐसे में चाय जनगोष्ठी की बात की जाए तो इनमें अलग-अलग जाति, उपजाति, जनजातीय लोकाचार के समन्वय के कारण पर्व-त्योहारों, उत्सव आदि के अतिरिक्त लोक-मान्यताओं की बहुलता है। चाय जनगोष्ठी में प्रमुख रूप से करम पूजा, टूचु/ टूसु पूजा, गरया पूजा, ग्राम पूजा, चारुल पूजा, मनसा पूजा, दुर्गा पूजा, मंगला पूजा, फगुआ, दीवाली आदि पर्वों का खूब प्रचलन है। परन्तु इन श्रमिकों के लोक-उत्सव पर असमिया परिवेश एवं संस्कृति के प्रभाव को भी नहीं नकारा जा सकता है। लगभग हर लोकाचार, नीति-नियमों आदि में कमोबेश परिवर्तन दृष्टव्य है। वर्तमान समय में चाय जनगोष्ठी में प्रचलित विभिन्न पर्व-त्योहार कुछ इस प्रकार है-

* *करम पूजा*

चाय जनगोष्ठी में मनाये जाने वाले सभी पर्व त्योहारों में 'करम पूजा' सर्वश्रेष्ठ है। यह ऋतु केंद्रित उत्सव है। वर्ष में तीन बार करम पूजा आयोजित की जाती है; यथा- जीतिया करम- भाद्र महीने के शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि को, रास करम- अगहन पूर्णिमा के दिन और बूढ़ी करम- आश्विन महीने के विजया दशमी के दिन। इन तीनों में जीतिया करम को श्रेष्ठतम मान्यता प्राप्त है। कृषि जीवन से संबंधित 'करम' लोक-उत्सव में कथा के माध्यम से कर्म और धर्म के महात्म्य को दर्शाया जाता है। इस उत्सव के आयोजन का मूल उद्देश्य भी यही है। इसीलिए कर्मा और धर्मा नाम के दो भाइयों की कथा के जरिये कर्म और धर्म दोनों के समन्वय से जीवन में सुख और समृद्धि की प्राप्ति की ओर इंगित किया जाता है।

करम पूजा में मूल रूप से वृक्ष की पूजा की जाती है। चाय जनगोष्ठी में पश्चिम बंगाल, झारखंड, उड़ीसा, मध्यप्रदेश आदि से आव्रजित श्रमिक समुदाय में प्रमुख रूप से करम पर्व का अधिक प्रचलन है। तथापि वर्तमान समय में करम जैसे धार्मिक उत्सव में नाना भाषा-भाषी तथा भिन्न संस्कृति और धर्मावलंबी लोग भी सामूहिक

रूप से भाग लेते हैं। वैसे तो करम कहने से आम लोगों में जीतिया करम यानी भादों के शुक्ल एकादशी को मनाये जाने वाले करम का ही बोध होता है। चाय जनगोष्ठी में इस जीतिया करम को ही सर्वाधिक धूम-धाम से मनाया जाता है। एकदशी तिथि के तीन/पाँच अथवा सात दिन पूर्व जावा अथवा झावा जागरण से इस धर्मोत्सव की शुरुआत होती है। कुमारी लड़कियाँ (करमती) ढोल, मादल, ताल आदि की धुन पर गीत गाते हुए नदी के किनारे धूप, दीप जलाकर पूजा करती हैं। फिर उस नदी से मिट्टी लाकर उसमें चना, मटर, गेंहूँ, धान, जौ, मूँग, सरसों आदि विभिन्न अनाजों को लगाती हैं। उस दिन से नित प्रति जागरण गीत गाते हुए करम देवता का वंदन करती हैं। ध्यातव्य है कि जावा जागरण गीतों की स्त्रष्टा नारी ही होती है। अतः इन गीतों में नारी के विभिन्न मनोभावों जैसे: सुख-दुःख, प्रेम, वासना आदि की सहज अभिव्यक्ति मिलती है।

जावा/झावा लगाने के दिन से लेकर एकादशी की तिथि तक ये सभी करमती सात्विक भोजन ही ग्रहण करती हैं। करम पूजा के दिन तक खूब अच्छे से उगे हुए झावा (बीजांकुर) को पूजा की सफलता और मनोनुकूल फलप्राप्ति का संकेत माना जाता है। विशेषकर पूजा के दिन सभी करमती 'करम डाल' अर्थात् कदंब अथवा शाल के पेड़ की पूजा कर उसकी शाखा को लाकर करम वेदी पर स्थापित करती हैं। सभी करमती फल, फूल, धूप-दीप, नैवेद्य आदि से करम वेदी की पूजा कर करम राजा का जोहार करती हैं। इस दौरान गाये जाने करम गीत की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"नावा डालि नावा सूप
नावारे करमती
दीपे दीपे बाइर देंलाइ
रेशमके बाति
आइजरे करमेका राति
तेली घरके तेला, कुम्हार घरते बाति
बार'त बारो दियारा चौप्रहर राति।"[1]

आशय यह है कि करम पूजा की शुभ बेला पर नये पूजा की डालि (पूजन सामग्री) और नये सूप में हमने आस्था का दीप जलाया है। अच्छे परिवार, सुख-शांति और समाज कल्याण के उद्देश्य से करम पूजा में दिन-रात व चारों पहर धूप-दीप जलाकर वंदना करने का रिवाज है। गीत की पंक्तियाँ करम पूजा की रात्रि में होने वाली पूजन गतिविधियों को स्पष्टतः दर्शाती हैं। इसके अतिरिक्त एक और ध्यान देने योग्य बात यह है कि अन्य समाज की ही तरह चाय जनगोष्ठी में भी जाति के अनुरूप पेशे का विभाजन मौजूद है। कुम्हार के घर का दीया

और तेली के घर से तेल लाकर दीप जलाया जाना इसी बात का प्रमाण है कि वस्तुतः ये सभी चाय श्रमिक हैं, बागानों में निरंतर कार्यरत रहते हैं। परन्तु इनके सामाजिक-सांस्कृतिक अनुष्ठानों में वर्ण व्यवस्था की झलक स्पष्ट रूप से दिखायी देती है।

करम कथा अर्थात् कर्मा-धर्मा की जीवन कथा को सुनना इस पर्व की महत्वपूर्ण और अनिवार्य रीति है। इस कथा को सुनाने के बाद कथा वाचक सभी करमती से प्रश्न रूप में करम देव से उनकी कामना व्यक्त करने के लिए कहते हैं। प्रत्युत्तर में वे कृष्ण जैसा पुत्र, पति, लक्ष्मण जैसा भाई, एक सुखी संसार की कामना रखती हैं। पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"गोपीन सबे करिल करम एकदशी
कृष्णके पाइल पुत्र देख जशोमती
गोपीन सब पाइल कृष्णके पति
ताइत करम पूजे जत करमती।।"[2]

पूरी रात जागरण में विभिन्न वाद्य-यंत्रों को बजाते हुए झुमुर नृत्य करने की परंपरा प्रचलित है। प्रातः काल बलि की प्रथा, कई बार झुपान यानी किसी व्यक्ति विशेष के शरीर पर देव का आगमन होता है। इसके साथ चाय जनगोष्ठी के जातीय पर्व 'करम पूजा' का समापन होता है।

(चित्र संख्या 4.1: करम पूजा)

* *टूचु/टुसु पर्व अथवा टूचु पूजा*

चाय जनगोष्ठी में प्रचलित विभिन्न पर्व-त्योहारों में प्रमुख है – टूचु पर्व। असम में भोगाली अथवा माघ बिहू के समय टूचु पूजा का आयोजन होता है। दरअसल, पूस की संक्रांति अर्थात् मकर संक्राति के दिन मनाया जाने वाला यह उत्सव चाय जनगोष्ठी समुदाय में प्रचलित एक प्रमुख ऋतु उत्सव है। डॉ० शुकदेव अधिकारी का मानना है कि "टुसुक संप्रति पूजा नुबुलि परव बा उत्सव मान्यता दिया हय। पूजा बुलुते करणीय आरु पालनीय आचार-अनुष्ठान खिनि बाद दिले 'टुसु' लौकिकतार गुणावलीरे विभूषिका एगराकी प्रकृतार्थ आदर्श नारी। तेने नारी जुगे जुगे प्रतिखन समाजरे काम्य, जि नारीये जगाइ तुलिब पारे भातृत्वबोध, देशप्रेम, स्वदेशप्रेम, त्याग आरु साहसर अदम्य प्रेरणा।"[3] अर्थात् टूचु/ टुसु को पूजा न कहकर पर्व अथवा उत्सव की मान्यता दी जाती है। पूजा कहने पर जितने भी आचार-अनुष्ठान आदि पालन किये जाते हैं उन सभी को यदि छोड़ दिया जाए तो 'टुसु' प्रकृतः एक ऐसी आदर्श नारी हैं जो लौकिकता के गुणों की विभूषिका हैं। ऐसी नारी युगों-युगों तक प्रत्येक समाज में भाईचारा, देशप्रेम, स्वदेशप्रेम, त्याग और साहस की अदम्य प्रेरणा का संचार करती हैं।

पौष पर्व अथवा टूचु/ टुसु पर्व मूलतः महिलाओं का उत्सव है। परंतु चाय जनगोष्ठी के पुरुष भी यथासंभव इस उत्सव में भाग लेते हैं। संस्कृत के 'तोष' धातु से इस शब्द की उत्पत्ति हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ है- संतुष्ट करना अथवा मन की इच्छाओं को पूर्ण करना। यही कारण है कि महिलाएँ अपनी सभी इच्छाओं की पूर्ति हेतु टूचु देवी की आराधना करती हैं। टूचु/ टुसु देवी को लेकर चाय श्रमिक समाज में कई दंतकथाएँ चली आ रही हैं। ऐसा माना जाता है कि मुगल दौर में एक जनजातीय परिवार की अत्यंत सुन्दर कन्या थी, जिसका नाम था टूचु/ टुसु। टूचु के सौंदर्य से मोहित होकर मुगल नवाब उसे पाने को व्याकुल हो गया। ऐसे में नवाब की लोलुप दृष्टि से बचने तथा सतीत्व की रक्षा हेतु कोई अन्य समाधान न पाकर टूचु ने आत्महत्या कर ली। जनप्रचलित है कि वह स्थान टूचुघाट नाम से प्रसिद्ध है। तब से टूचु के स्मरण में टूचु पर्व मनाया जाने लगा। इसके अलावा कुछ स्थानों पर टूचु/ टुसु पर्व से संबंधित आख्यानों में अलाउद्दीन और रानी पद्मावती की कथा का भी प्रचलन है। कुछ लोग टूचु/ टुसु देवी को शिव की पुत्री, मनसा की बहन, काली, दुर्गा, सीता, सावित्री आदि रूप में कल्पना कर उनकी वंदना करते हैं। कुलमिलाकर टूचु/ टुसु देवी के संबंध में प्रचलित तमाम आख्यानों के माध्यम से उनके त्याग और आदर्श को समाज में प्रतिष्ठित किया जाता है। चाय जनगोष्ठी की

महिलाएँ त्याग और साहस की देवी टूचु की आराधना कर कर्तव्यनिष्ठ, बलिदान, साहस और सतीत्व के मार्ग पर चलने की कृपा प्राप्त करना चाहती हैं।

पूस संक्रांति के सात अथवा नौ दिन पूर्व कुमारी कन्याएँ टूचु देवी की पूजा के लिए वेदी स्थापित करती हैं। उस दिन से लेकर संक्रांति के दिन तक प्रति रात्रि टूचु जागरण गीतों को गाने की परंपरा है। वेदी को स्थापित करने के दौरान प्रचलित गीत की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं:

"तेल दिलाम शलिता दिलाम
स्वर्गे दिलाम बाति
सवे देवी सइन्झा लेउमा
घरेरे कुलवती।
गाइ आइल रासुर आइल
आइल भगवती
एके एके सइन्झा लेउमा
घरेर कुलवती ।"[4]

इस गीत को गाते हुए घर की वधू तेल और बाती से टूचु देवी का नाम स्मरण करते हुए संध्या-दीप प्रज्वलित करती है। इस दीप के माध्यम से वह स्वर्ग लोक के सभी देवी-देवताओं का चरण वंदन करते हुए पूरे परिवार के हेतु शुभाशीष और कृपा दृष्टि की कामना करती है। टूचु पर्व में महिलाएँ पूरी तरह से सात्विक भोजन ग्रहण करती हैं। टूचु/ टुसु पर्व के आयोजन हेतु चाय जनगोष्ठी की महिलाएँ अपने बीच से ही 'टूचु मा' का निर्वाचन करती हैं जो पूजा की तमाम गतिविधियों को कुशलता से संपन्न करवाती है। टूचु पर्व में प्रचलित विभिन्न गीतों में दैविक गुणों के अलावा विवाह वर्णन, सतीत्व आदि के माध्यम से चाय जनगोष्ठी की महिलाओं के जीवन और मनःस्थिति की अभिव्यक्ति मिलती है। इन गीतों में टूचु वंदना गीत, आदरणी (स्वागत) गीत, जागरण गीत, टूचु घूमुवा गीत, विवाह गीत, देव-देवीर वर चयन गीत, टूचु रूप-यौवन वर्णन गीत, सास-ससुर, देवर-ननद आदि को लेकर प्रचलित गीत, विसर्जन गीत आदि सामूहिक रूप में गाये जाते हैं।

चाय जनगोष्ठी में टूचु पर्व के दौरान जागरण के दिन निर्वाचित 'टूचु मा' के आंगन में टूचु देवी के सती होने के प्रतीक स्वरूप अग्नि दाह किया जाता है। ऐसी मान्यता है कि इस अग्नि के ताप को ग्रहण करने पर मन निर्मल होता है तथा समाज से वैमनस्य की समाप्ति होती है। सभी के हृदय में प्रेम और भाईचारे की भावना का संचार होता है और सारी मनोकामनाएँ पूरी होती हैं। (ग़ौरतलब है कि असम में उसी दिन मनाये जाने वाले

भोगाली बिहू में भी इसी तरह 'मेजी' जलाकर समाज से नकारात्मकता की समाप्ति की कामना की जाती है। उस दिन प्रातः 'मेजी' अर्थात् लकड़ियों की ऊँची समाधि को जलाकर उसके ताप को लेना अनिवार्य होता है।) पूजा का समापन टूचु देवी के विसर्जन से होता है। परंतु देवी के विसर्जन से पूर्व गाँव के प्रत्येक घर में टूचु देवी को भ्रमण कराया जाता है ताकि चाय श्रमिक महिलाएँ टूचु देवी की भाँति त्याग और समर्पण के पथ पर चलने हेतु उद्बोधित हों, समाज में सुख, समृद्धि, शांति का वातावरण बना रहे। कुलमिलाकर महिलाओं को आदर्श जीवन की अनुप्रेरणा देना टूचु पर्व का मूल उद्देश्य है।

* *ग्राम पूजा*

मूल रूप से, चाय श्रमिक समाज की कल्याण-भावना के निहितार्थ ग्राम पूजा का आयोजन किया जाता है। वैसे तो यह पूजा सामूहिक तौर पर आयोजित की जाती है परंतु कई स्थानों पर व्यतिगत स्तर पर भी पारिवारिक सुख, शांति, समृद्धि तथा अमंगल से निवृति की कामना से लोग अलौकिक अधीश्वर की अराधना करते हैं। इसके पीछे की मान्यता यह है कि परिवार के रक्षक देव का किसी कारणवश रुष्ट हो जाना अत्यंत अशुभ घटना है। यही कारण है कि अधिकतर चाय श्रमिक अपने घरों के बाहर प्रत्येक वर्ष वैशाख से सावन के महीने के बीच शुभ तिथि नियत कर गृह देवता की विधिवत पूजा-अर्चना करते हैं। आमतौर पर गृह देवता की पूजा को 'बूढ़ा ठाकुर/ बूढ़ा भांगीया पूजा' कहा जाता है।

सर्वविदित है कि चाय बागानों के श्रमिकों के लिए लेबर लाइन्स अथवा कूली लाइन्स कहे जाने वाले तथाकथित समाज से इतर गाँव बसाये जाते हैं। यह स्थिति आज भी बनी हुई है। अतः चाय जनगोष्ठी के लोग अपने गाँव को अमंगल, कुसंस्कार, महामारी तथा नकारात्मक शक्तियों के प्रभाव से बचाने हेतु ग्राम देवता जिन्हें 'ग्राम ठाकुर' कहा जाता है; उनकी पूजा करते हैं। आषाढ़ के महीने में बहुताधिक अंचलों में ग्राम पूजा आयोजित करने का प्रचलन है। चाय बागानों में अथवा चाय श्रमिकों की बस्तियों में एक निश्चित स्थान पर ग्राम देवता की पूजा होती है। चाय जनगोष्ठी में इसके लिए 'देउथान अथवा देउघर' शब्द प्रचलित है। इस अवसर पर चाय श्रमिक समाज के सभी वर्ग, वर्ण तथा आयु के लोग समान रूप से हिस्सा लेते हैं। इस समाज के ही कुछ लोग मिलकर पूजा की विधियों को संपन्न करते हैं। ग्राम पूजा की विशेष विधि के रूप में गाँव की सीमा के चारों ओर फूल, धूप-दीप आदि से पूजा कर छोटे-छोटे झंडे लगाये जाते हैं कुछ स्थानों पर गाँव की सीमा को सूते से भी बाँधने का रिवाज है। इसे ग्राम बंधन कहा जाता है जो सभी प्रकार की नकारात्मकता, भूत-

प्रेत, डायन आदि से समस्त ग्राम की रक्षा का सूचक होता है। इसके बाद देवस्थान पर जाकर ग्राम देवता के नाम का झंडा लगाकर बलि देने की प्रथा सुनिश्चित है। इस पूजा में ढोल, ताल, नागरा (नगाड़ा), खुल, मादल आदि वाद्य-यंत्रों को तब तक बजाया जाता है जब तक पुजारी अर्थात् गाँव का वह व्यक्ति जो ग्राम पूजा को विधिवत संपन्न कराता है उसके शरीर पर ग्राम देवता का आगमन न हो जाए। चाय जनगोष्ठी में यह लोकविश्वास है कि पुजारी के शरीर पर ग्राम-देव का आगमन होगा और वे इन श्रमिकों की सभी समस्याओं का समाधान बताएंगे। इस पूरी प्रक्रिया को 'झुपान या सटिया' कहा जाता है। सामूहिक रूप से बलि का प्रसाद ग्रहण कर पूजा संपन्न की जाती है।

* *गरया पूजा*

चाय जनगोष्ठी के बहुत से लोग 'गरया पूजा' को 'साँहराई पर्व' भी कहते हैं। कार्तिक अमावस्या के दिन अथवा कुछ लोग अमावस्या से पाँचवें या सातवें दिन भी इस पर्व को मनाते हैं। गरया पूजा में गौ-पूजन के अतिरिक्त कृषि संबंधी औजारों जैसे: हल, जुवाल, कुदाल आदि को तेल, सिंदूर का तिलक लगाकर आरती करने की परंपरा है। इसमें मूलतः गौ-सेवा के माध्यम से पशुओं के प्रति भक्ति दिखायी जाती है। पूजा के दिन सर्वप्रथम गायों को तेल-हल्दी लगाकर नहलाया जाता है तथा गले में नयी रस्सी (पगहा) बाँधी जाती है। उसके बाद गोहाल में महादेव, धरम देव, ग्राम देवता, बाघ, वन देवता अर्थात् पंचदेव की विशेष पूजा की जाती है| फिर बलि-प्रथा संपन्न कर गायों के अच्छे स्वास्थ्य की कामना की जाती है। इस पूजा के प्रारंभ होने के तीन, पाँच या सात दिन पहले से गौ जागरण गीतों (जाहली गीत) का खूब प्रचलन है।

गरया पूजा के प्रचलन को लेकर चाय जनगोष्ठी में कई किवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं। ऐसी मान्यता है कि कृषिजीवी लोग खेत में गाय-बैलों से अपनी आवश्यकतानुरूप काम करवाते हैं। तमाम शारीरिक यातनाएँ देकर भी अपने स्वार्थ की सिद्धि करते हैं। इसी कारण ये पशु अपनी सारी व्यथा महादेव से कहते हैं। अतः कार्तिक की अमावस्या को इनकी समस्याओं के समाधान हेतु भगवान शिव का पृथ्वी लोक पर आगमन होता है। यही कारण है कि प्रत्येक वर्ष चाय श्रमिक समाज में कार्तिक अमावस्या को घर-आँगन में अल्पना बनाकर, दीप प्रज्वलित कर, गायों को माता का दर्जा देते हुए उनकी विशेष रूप से पूजा की जाती है। चाय जनगोष्ठी में गरया पूजा के अवसर पर प्रचलित जाहली गीतों के माध्यम से गौ-धन के प्रति कृषकों के आतंरिक भावों और संवेदनाओं की अभिव्यक्ति होती है। गौ-जागरण गीत (जाहली गीत) की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"तोहो दया करवे इशर महादेवा ग'

बाढ़त घरके शांति किषाण ग'

बाढ़त घरके किषाण ग'

x x x

अदीरे-जागमा लछमी, जागमा भगवती ह'

जागमा आमासका रात ह'

जागाका प्रतिफल देबे माँ लछमी ह'

पाँच-पुत्र दश धेनु गाइ ह' "[5]

उपर्युक्त पंक्तियों में कृषक जीवन की तमाम विसंगतियों, दुःख, दरिद्रता आदि के कारण गाय-बैलों के प्रति इनकी स्वार्थपरता अत्यंत बढ़ जाती है। इसीलिए ये कृषकजन गौ पूजन को विधिवत संपन्न कर अन्य देवी-देवताओं यथा: महादेव, विष्णु, दशभुजा देवी दुर्गा, लक्ष्मी आदि का चरणवंदन कर क्षमा-याचना करते हैं। गायों में श्रेष्ठ कामधेनु की तथा गौ-परिवार में वृद्धि की आकांक्षा रखते हुए अपने पूरे परिवार की सुख, शांति और समृद्धि की कामना करते हैं।

* *चारुल पूजा*

चाय जनगोष्ठी के मुंडा, संथाल, उराँव, खड़िया आदि समुदायों में 'चारुल' अथवा 'बाँहा पूजा' का अधिक प्रचलन है। 'बाँहा' से तात्पर्य है – फूल। वसंत के आगमन से पेड़-पौधे, नये पत्तों तथा रंग-बिरंगे फूलों से आच्छादित रहते हैं। प्रकृति का यह मनमोहक रूप सजह ही मानव मन को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। चारुल पूजा में प्रकृति के इन्हीं शोभाकारक फूलों की पूजा की जाती है। यह उत्सव तीन दिनों तक चलता है। मुंडा सम्प्रदाय में यह लोकविश्वास प्रचलित है कि 'चारजन' अर्थात् शाल के पेड़ में मुंडा सम्प्रदाय के प्रथम दम्पति 'लुटकुम हाड़ाम' और 'लुटकुम बुढ़िया' का वास है। वे इनके समाज की मंगल कामना करते हुए सभी विघ्न-बाधाओं से इनकी रक्षा करते हैं। इसीलिए चारुल पूजा के पहले दिन चारजन अथवा शाल के पेड़ की पूजा कर उस रक्षक दम्पति के प्रति अगाध श्रद्धा व्यक्त करते हैं। चैत्र महीने की पंचमी अथवा सप्तमी अथवा नवमी तिथि को बाँहा पर्व का आयोजन होता है। इस पूजा में नौ प्रकार की सब्जियाँ और फल खाने की प्रथा है। इस पूजा की मूल परंपरा के रूप में पर्व के दूसरे दिन समाज के सभी लोगों के घरों को फूलों से सजाया जाता

है। संथाल सम्प्रदाय के लोग प्रकृति का मातृ रूप में वंदना करते हैं। प्रकृति की बेहतरीन सृष्टि मानव है। इनके समाज में प्रचलित विश्वास के आधार पर मानव देह का दाहिना भाग पुरुष तथा बाँया भाग स्त्री है। ये संथाल जन मारांबुरुक देव और जाहेर देवी को सश्रद्धा नमन करते हैं। चारुल या बाँहा पर्व के तीसरे दिन 'जाले' का प्रचलन है। अर्थात् इस समाज के सभी आस-पड़ोस के लोग एक-दूसरे के घरों में जाकर भोजन करते हैं तथा बड़े-बुजुर्ग छोटों को आशीर्वाद देते हैं। इस पूजा के पश्चात् चाय जनगोष्ठी के लोग आपसी मतभेद, हिंसा, द्वेष आदि नकारात्मक भावों का त्याग कर आपसी सौहार्द की भावना से एकजुट होकर रहते हैं। इसी कारण चारुल पूजा को समन्वय का उत्सव भी कहा जाता है। चारुल पूजा के समय प्रचलित गीत की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"फागुन माया बलयेना डारोचाकाम
चागिनेना बाहा बागानरे
बाहामाया बाहायेना बाहा बागानरे नेले दुरूं
दुरूं दुरूं बाहा बागानरे.....।"[6]

चारुल पूजा में प्रचलित गीतों में प्रकृति अपने मूर्त रूप में प्रस्तुत होती है। उद्धृत पंक्तियों से आशय है कि फाल्गुन के महीने में प्रकृति अपने पूर्ण यौवन रूप में है। चारों तरफ फूलों से लदी डालियों पर भौंरें रसपान कर रहे हैं। ऐसे में विरहिणी प्रेयसी का मन अपने प्रियतम से मिलन हेतु आतुर है। प्रियतम के बिना उस विरहिणी प्रेमिका के मन को हरियाली, प्रकृति की मनमोहक छटा, चिड़ियों का चहकना आदि कुछ नहीं भाता। चारुल पूजा के गीतों में मूलतः प्रकृति के परिवर्तन के साथ मानव मन में होने वाले परिवर्तन, प्रकृति के प्रति प्रेम और आस्था की अभिव्यक्ति मिलती है।

* *मंगला पूजा*

चैत्र महीने की पूर्णिमा तिथि के पहले मंगलवार को मंगला पूजा का आयोजन होता है। विशेषकर उड़ीसा से प्रव्रजित समुदायों में तथा हाड़ि, घांसि, दंदासी आदि समुदाय के लोगों में इस पूजा का अधिक प्रचलन है। इस पूजा में बारह वाद्य यंत्रों, इक्कीस बेल पत्र, बलि हेतु लाल रंग का मुर्गा अथवा बकरा, शराब आदि अत्यंत प्रयोजनीय सामग्री है। सूर्यास्त के पूर्व ही समाप्त किये जाने वाले चैत्र अथवा मंगला पूजा में चौमुखी कलश में नदी अथवा पोखर से जल लाकर उसे अभिमंत्रित किया जाता है। समस्त समाज से अमंगल तथा रोग-दोष से निवृत्ति और जनकल्याण के उद्देश्य से वर्ष के प्रारंभ में इस पूजा का पारंपरिक रूप से आयोजन किया जाता है। मंगला पूजा के अवसर पर प्रचलित लोकगीत की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"जयतु मंगला माग' जय हरि चंडी;
तोत सुमरिले माग' दुरित जे खंडि।
बिपद कालरे सुमरंति जेऊँ जन;
महा घोर संकटरु फिटाउ बंधन।
अदृश्यकु दृश्य हुये त' नाम धइले;
बिपत्ति नथाये माग' तते सुमरिले।"[7]

गीत की ये पंक्तियाँ चंडी देवी की आराधना में प्रचलित हैं। इस गीत को गाते हुए महिलाएँ अपनी भक्ति से माता चंडी को प्रसन्न कर सभी दोषों और विघ्नों से निवृत्ति की कामना रखती हैं। इसीलिए आदिशक्ति, जगत जननी माता चंडी की स्तुति में ये महिलाएँ कहती हैं कि हे मंगल करणी देवी आपकी सदा जय हो। आपके सुमिरन से ही सभी बाधाएँ खंडित हो जाती हैं। जो जन विपत्ति काल में आपकी स्तुति करते हैं उनके बड़े से बड़े संकटों का भी निवारण हो जाता है। आपके नाम स्मरण मात्र से ही अदृश्य भी दृष्टिगत हो जाता है तथा सभी विपत्तियों का समूचा नाश संभव हो जाता है। शक्ति स्वरूपा चंडी देवी की महिमा का गान करते हुए चाय जनगोष्ठी की महिलाएँ अपने समस्त परिवार की अमंगल, संकट आदि से निवृत्ति हेतु वंदन और नमन करती हैं।

* *दुर्गा पूजा तथा काली पूजा*

समूचे भारतवर्ष की सनातन संस्कृति में जिन विधियों से दुर्गा पूजा, काली पूजा और दीपावली आदि का आयोजन होता है; लगभग उन्हीं सांस्कृतिक परंपराओं और गतिविधियों का अनुसरण करते हुए चाय जनगोष्ठी में भी इनका आयोजन बहुत पहले से होता आ रहा है। आश्विन की षष्ठी तिथि से शारदीय शक्ति पूजा अर्थात् दुर्गा पूजा का आयोजन चाय जनगोष्ठी में हर्ष का केंद्र है। बागानों में सालों भर काम करने के बाद दुर्गा पूजा से ठीक पहले इन श्रमिकों को बोनस मिलता है। ऐसे में नये वस्त्र लेने, मिठाइयाँ, पकवान आदि की खरीदारी इनकी ख़ुशियों को कई गुना बढ़ा देती है। चाय जनगोष्ठी के अधिकतर लोग आश्विन की अष्टमी तिथि को सफेद बकरे अथवा हंस की बलि देते हैं तथा ढोल, मादल आदि की ताल पर झुमुर नृत्य करते हैं। दुर्गा पूजा के अवसर पर गाये जाने वाले लोकगीत की इन पंक्तियों के माध्यम से चाय जनगोष्ठी के प्रत्येक जन के हर्ष का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है-

"आश्विन मासे दुर्गा पूजा
सबाई पिंधे लाल शारी
चलग' दादा देखते जाब

ढाकेर केमन गुड़गुड़ी।"[8]

(भाव यह है कि आश्विन के महीने में मनाये जाने वाले दुर्गा पूजा के अवसर पर चाय जनगोष्ठी की सभी महिलाएँ लाल रंग की साड़ियाँ पहनती हैं। उस समय बजाये जाने वाले विभिन्न वाद्यों को सुनकर इन महिलाओं की उत्सुकता तथा हर्ष और अधिक बढ़ जाते हैं।)

दीपावली के दिन यानी कार्तिक अमावस्या की रात्रि में चाय जनगोष्ठी में शास्त्राचार के अनुसार पूरे विधि-विधान से काली पूजा की जाती है। इस पूजा के दौरान महिलाएँ अपने केश खुले ही रखती हैं। किसी भी प्रकार की चूक न हो जाए इसके लिए खूब सावधानी बरती जाती है। अन्यथा देवी के रुष्ट अथवा क्रोधित होने पर उनके साथ पृथ्वी पर आये भूत-प्रेतादि इन सभी का अमंगल करेंगे। यह भी मान्यता है कि काली पूजा के दिन डायन और तांत्रिक आदि अपने मन्त्रों को जागृत करते हैं।

* *फगुआ*

फगुआ अर्थात् रंगोत्सव। भारत के विभिन्न अंचलों में तथा जाति-समुदाय के लोगों द्वारा जिस उत्साह से होली का त्योहार मनाया जाता है; असम की चाय जनगोष्ठी में इस त्योहार को लेकर उत्साह में लेश मात्र कमी की गुंजाइश नहीं रहती। फाल्गुन पूर्णिमा को मनाये जाने वाले होली के त्योहार को चाय जनगोष्ठी में फगुआ अथवा होलिका उत्सव कहा जाता है। चाय जनगोष्ठी में समाज की बुराइयों, नकारात्मकता, कुरीतियों का नाश कर प्रेम और शांति की प्रतिष्ठा हेतु फगुआ उत्सव का प्रचलन है। अन्य समुदायों की भाँति इनमें भी होलिका दहन की परंपरा है। उस दौरान सभी लोग हरि का नाम लेते हैं। फगुआ उत्सव में प्रचलित लोकगीतों में खासकर कृष्ण लीला का वर्णन मिलता है। भगवान विष्णु के नरसिंह अवतार, हिरण्यकश्यप-प्रह्लाद की कथा, विष्णु-तुलसी की कथा, कृष्ण के बाल रूप के वर्णन के साथ पूतना राक्षसी का प्रसंग, राधा-कृष्ण-गोपियों का प्रेम वर्णन (रासलीला) आदि विभिन्न कथात्मक प्रसंगों के माध्यम से चाय जनगोष्ठी में फगुआ के प्रचलन को प्राथमिकता दी गयी है। एक-दूसरे को रंग लगाकर प्रेम और सौहार्द की भावना का संचार ही फगुआ उत्सव मनाने का मूल ध्येय है। असम की चाय जनगोष्ठी में फगुआ पर्व को लेकर आजकल शंकरदेव के वैष्णव धर्म का प्रभाव तथा विभिन्न मान्यताओं का प्रचलन भी देखा जा रहा है।

* *धरम पूजा*

'धरम' अथवा 'धर्म पूजा' में सूर्य, चंद्र, महादेव, इष्ट देव, यम, पूर्वज आदि देवों की एक साथ पूजा होती है। भिन्न अंचलों अथवा समुदायों में धर्म पूजा के नीति-नियमों में कमोबेश परिवर्तन दृष्टिगत होता है। चाय जनगोष्ठी में इस पूजा का आयोजन समाज के हित व मंगल के उद्देश्य से किया जाता है। ऐसा जनविश्वास है कि धरम पूजा से समाज में सुख, शांति बनी रहती है। धरम पूजा में सूर्य देव के नाम से लाल रंग की और धरम देवता का नाम स्मरण कर सफेद रंग की मुर्गी की बलि देते हैं। बलि के माँस को मिलाकर बनायी गयी खिचड़ी का सर्प्रथम देवताओं को भोग लगाया जाता है फिर समाज के बड़े-छोटे सभी लोग इस प्रसाद को ग्रहण करते हैं।

* *मनसा पूजा*

आमतौर पर मनसा पूजा सावन महीने की नाग पंचमी तिथि को मनायी जाती है परन्तु चाय जनगोष्ठी के अधिकतर लोगों जैसे बाउरी, गोवाला, तुरी, कुर्मी, खैरा, शूंड़ी, लोहार, कमार, मैरा, भूमिज, बनिया, हाजाम, चाषा आदि समुदाय के लोग भाद्र महीने की अंतिम तिथि को मनसा पूजा का आयोजन करते हैं। इस पूजा का आयोजन चाय श्रमिक समाज के लोग आपसी सौहार्द से करते हैं। विभिन्न वाद्य-यंत्रों को बजाते हुए मनसा देवी के कथा-वाचन की विशेष परंपरा है। 'झुपान' अर्थात् शरीर पर देवी-देवताओं का आगमन प्राचीन समय से शुभ माना जाता रहा है। चाय जनगोष्ठी समाज में सर्पों की अधिष्ठात्री देवी माँ मनसा उग्र प्रवृत्ति की देवी मानी जाती हैं। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि पूजा में किसी भी प्रकार की त्रुटि की गुंजाइश न रहे। मनसा पूजा के अवसर पर देवी की मूर्ति लाकर नीति-नियमों का पालन करते हुए पूजा की जाती है। किसी पोखर या तालाब के जल और कमल के फूल से देवी के सम्मुख वंदना करते हैं। पूजा के अंतिम दिन अर्थात् विसर्जन के दिन गृहस्थ, देवी को 'पंइता भात' यानी पानी में रखा हुआ भात, झीका और मांगुर मछली का भोग लगाते हैं। इसके पीछे यह जनश्रुति है कि स्वर्ग लोक में प्रस्थान के बाद यदि देवताओं को देवी मनसा के भव्य स्वागत की खबर मिलेगी तो अगली बार देवी के साथ अन्य देवगण भी पृथ्वी पर आएँगे| और, ये दरिद्र श्रमिक सभी देवताओं का स्वागत उतने भव्य तरीके से नहीं कर पाएँगे। इससे देवगण क्रोधित होंगे और सबका अमंगल होगा। मनसा पूजा के समापन के दिन 'कड़रा' नामक एक विशेष खेल का आयोजन होता है जिसमें कुश से बनी रस्सी जिसे साँप का प्रतीक माना जाता है; उससे बलपूर्वक शरीर पर प्रहार करते हैं। इस तरह मनसा पूजा का समापन होता है।

* *सूर्याही पूजा*

पृथ्वी पर ऊर्जा का मूल स्रोत सूर्य है। चाय जनगोष्ठी में सूर्याही पूजा के अवसर पर सूर्योदय के साथ ही ऊर्जा के प्रमुख स्रोत सूर्य की उपासना प्रारंभ कर दी जाती है। ग्रीष्म ऋतु अर्थात् बैशाख-जेठ के महीने में पाँच अथवा बारह वर्ष के अंतराल पर पूजा का आयोजन होता है। सूर्याही पूजा को 'उषा पूजा' के नाम से भी जाना जाता है। इस पूजा का आयोजन व्यक्तिगत स्तर पर ही अधिक होता है। इस अवसर पर हंस अथवा बकरे की बलि दी जाती है किन्तु पूजा के प्रसाद को घर ले जाना वर्जित है। पूजन स्थल पर ही प्रसाद का सेवन करना अनिवार्य है। प्रमुख रूप से ग्रह-दोष से मुक्ति, कष्ट-यंत्रणा, अमंगल, महामारी, भूत-प्रेत, चुड़ैल, डायन आदि से रक्षा हेतु शक्ति-स्रोत सूर्य की उपासना चाय जनगोष्ठी में आज भी प्रचलित एवं प्रासंगिक है।

* *माघ अनुष्ठान*

चाय जनगोष्ठी में माघ के महीने में कृषि से संबंधित अनेक पर्व-त्योहार मनाये जाते हैं। छिटपुट भिन्नताओं के साथ अलग-अलग अंचलों के चाय श्रमिक इन पर्व-त्योहारों में तल्लीनता से शामिल होते हैं। माघ अनुष्ठान से तात्पर्य है माघ के महीने में मनाये जाने वाले विभिन्न पर्व जैसे: 'आखाइन यात्रा'। इसके अंतर्गत चाय जनगोष्ठी में माघ महीने के पहले दिन से ही कृषि का आरंभ माना जाता है। इस दिन कृषि से संबंधित सभी औजारों यथा हल-जुवाल, दाब, कुदाल आदि को तेल, सिन्दूर और चावल के आटे से तीन-तीन बार तिलक लगाते हैं। इसके अतिरिक्त गाय-बैलों को भी तेल-हल्दी लगाकर उनकी पूजा करते हैं। इन विधियों के समापन के बाद कृषक खेत की जुताई करता है| यह इस पूजा की विशिष्ट और अनिवार्य विधि है। ऐसा कर कृषक आगंतुक वर्ष में कृषि हेतु अनुकूल परिस्थितियों और अच्छे फसल की कामना करते हैं। जिनके पास खेत नहीं होते वे मात्र सांकेतिक रूप से इन नियमों का पालन करते हुए कुदाल से अपने घर के आस-पास की साफ-सफाई करते हैं। अंत में तीर-धनुष, भाला आदि लेकर शिकार को निकल पड़ते हैं तथा बाहर ही सामूहिक रूप से भोजन करते हैं।

इसके अलावा माघ अनुष्ठान में 'इन्खुर पूजा' और 'चूल्हा-धुला' पूजा का काफी प्रचलन है। कार्तिक महीने में मनाये जाने वाले 'गरया पूजा' की ही तरह माघ में गायों के चर्म रोग से बचाव के लिए चाय जनगोष्ठी में सामूहिक रूप से इन्खुर पूजा का प्रचलन है। चाय जनगोष्ठी में जिन लोगों के घर में गाय नहीं है वे भी इस पूजा को मनाते हैं। इससे इस बात की भी पुष्टि होती है कि ये श्रमिकजन पशुओं के प्रति संवेदना रखते हैं तथा उनके

शुभाकांक्षी हैं। चूल्हा-धुला पूजा का विशेषकर कंधेर समुदाय के लोगों में अधिक प्रचलन है। इस दिन चाय श्रमिक समाज के लोग उपवास रहकर अपने पूरे घर की लिपाई-पुताई करते हैं। फिर तीन ईटों को जोड़कर बनाये गये चूल्हे को दुग्ध अर्पित कर तेल-सिन्दूर का तिलक लगाते हैं। इस पूजा में मुर्गे की बलि देकर उसके सिर को चूल्हे के बीच में गाड़ देने की विशेष परंपरा से इस पूजा का समापन होता है। भूमिज संप्रदाय में इसी दिन कर्णवेधन संस्कार का आयोजन होता है।

चाय जनगोष्ठी के लोग अधिकतर बागानों, वनों, खेतों में काम करते हैं। इसीलिए मच्छर, चींटी एवं अन्य कीट-पतंगों से बचाव के लिए पूस और माघ महीने की संक्रांति को कीट-पतंगों की देवी फुसपूनी की पूजा करते हैं। इसके अतिरिक्त तरह-तरह की घातक बीमारियों से बचाव तथा आपदाओं के नाश हेतु वर्ष के प्रारंभ में बागानों के आस-पास खुले मैदान में शनि की पूजा की जाती है। इस पूजा को चाय जनगोष्ठी समुदाय में 'कुड़ाल बाग्देइ पूजा' के नाम से जाना जाता है। चाय श्रमिक समाज के कुछ लोगों में बड़ पहाड़ी पूजा और बीर पूजा का प्रचलन देखा जाता है। विशेषकर पहाड़ी अंचलों के आदिवासी समूहों में बड़ पहाड़ी पूजा में वन देवता तथा जंगलों की विधिवत पूजा कर वन्य प्राणियों के आक्रमण से रक्षा हेतु श्रद्धा व्यक्त करते हुए शुभाशीष की कामना की जाती है। आज भी इस पूजा की प्रासंगिकता चाय जनगोष्ठी में बरकरार है। इस पूजा में महिलाओं के प्रवेश व सहभागिता का निषेध है। इसके विपरीत वर्तमान समय में बीर पूजा का प्रचलन लगभग समाप्त हो चुका है। यह मूल रूप से चाय जनगोष्ठी में मध्य प्रदेश से आये लोगों में प्रचलित था। चाय श्रमिकों में कुछ ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने धर्मान्तरण कर लिया है। इनमें से इस्लाम धर्म को मानने वाले पारंपरिक रूप से रमजान के महीने में रोजा तथा ईद के अलावा अन्य सभी त्योहारों को अत्यंत हर्ष के साथ मनाते हैं। तो वहीं इसाई धर्म के अनुयायी क्रिसमस, इस्टर, गुड फ्राइडे आदि उत्सवों का पालन करते हुए गिरजाघर में जाकर प्रार्थना भी करते हैं। आजकल असम में चाय जनगोष्ठी समुदाय के कुछ लोग नव वैष्णव धर्म के अंतर्गत दीक्षित हुए हैं। साथ ही असमिया संस्कृति के जातीय उत्सव बिहू आदि को भी अपने संस्कृतिगत नियमों के साथ इन श्रमिक समुदाय ने आत्मसात किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि चाय जनगोष्ठी के विभिन्न पर्व-त्योहारों में हिन्दू, इस्लाम और इसाई धर्म से संबंधित मान्यताएँ और उत्सव भी शामिल हैं। इन उत्सवों एवं पर्व-त्योहरों के आयोजन में श्रमिक समाज धर्म तथा जाति के भेद को भूलकर परस्पर प्रेम और सौहार्द की भावना से आपसी साहचर्य एवं समन्वय बनाये रहते हैं। अतः ये पर्व-त्योहार चाय जनगोष्ठी के सामाजिक-सांस्कृतिक एकीकरण के आधार भी हैं।

संदर्भ सूची-

1. (सं.) सुशील कुर्मी, मेघराज कर्मकार रचनावली, पृष्ठ संख्या. 199
2. वही, पृष्ठ संख्या. 201
3. शुकदेव अधिकारी, चाह जनगोष्ठीर लोकगीत लोक परंपरा आरु उत्सवर रूपरेखा, पृष्ठ संख्या. 240
4. तथ्यदाता: श्री भद्र राजोवार, नाजिरा, शिवसागर (दिनांक: 22.12.2021)
5. तथ्यदाता: श्री मकर सिंह भूमिज, लेसेंकार बंगाली गाँव, तिनसुकिया (दिनांक: 28.11.2022)
6. शुकदेव अधिकारी, चाह जनगोष्ठीर लोकगीत लोक परंपरा आरु उत्सवर रूपरेखा, पृष्ठ संख्या. 159
7. वही, पृष्ठ संख्या. 164
8. वही, पृष्ठ संख्या. 162

4.3 चाय जनगोष्ठी के लोक-विश्वास

मानव जीवन की शैली लोक-विश्वास से जुड़ी हुई है। यही कारण है कि प्रत्येक समाज प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में लोक-विश्वास से संबद्ध है। किसी भी जनसमुदाय में प्रचलित लोक-विश्वास उस समाज के जीवन-बोध, सामाजिक मूल्य, शकुन-अपशकुन, मंगल-अमंगल, उचित-अनुचित, परंपरागत रीति-नीति, लोकाचार आदि के आधार पर गढ़े जाते हैं जो जन्म से लेकर मृत्यु तक की संपूर्ण यात्रा के दौरान मानव जीवन को प्रभावित करते हैं। दरअसल, ये लोक विश्वास मानव मन में उपजी ऐसी धारणाएँ हैं जो तमाम वैज्ञानिक तर्कों से पृथक आस्था से विकसित होती हैं तथा पीढ़ी-दर-पीढ़ी इनका संवहन होता है। आमतौर पर लोक-विश्वास की सुदीर्घ परंपरा के पीछे सामान्य जनमानस में शुभ-अशुभ के प्रति भय और तथ्यों को लेकर अज्ञानता का भाव निहित होता है। उदाहरण के तौर पर किसी रोगी के महामारी अथवा किसी अन्य जानलेवा बीमारी से ग्रस्त होने पर इष्टदेव से मान-मनौती करना, सर्दी-ज्वर आदि को देवी-देवताओं का प्रकोप समझना, चिकित्सा के बजाय तंत्र-मंत्र को अधिक वरीयता देना आदि मूलतः अज्ञानता के ही सूचक हैं। इसी तरह प्राकृतिक आपदाओं को अदृश्य शक्तियों का प्रकोप माना जाता है। इन अदृश्य शक्तियों को संतुष्ट करने व आपदाओं से बचाव के उद्देश्य से तरह-तरह के कर्मकांड किये जाते हैं। ऐसी ही धार्मिक मान्यताएँ, कर्मकांड और रीति-नीति समाज में रूढ़ हो जाती हैं तथा अनेक पीढ़ियों में चिर प्रचलित होकर ये लोकविश्वास में तब्दील हो जाती हैं। हालाँकि इस बात को भी नहीं नकारा जा सकता है कि लोक-विश्वास कमोबेश शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्ग को प्रभावित करता है। इसीलिए लोक साहित्य के मूर्धन्य विद्वान डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय लोक-विश्वास को 'कंटेजियस डिजीज' कहते हैं जिसका लंबे समय तक संक्रमण होता है। वे अपनी पुस्तक "भारतीय लोक-विश्वास" में लोक-विश्वास के संदर्भ में यह मत रखते हैं कि "लोक-विश्वास लोकजीवन की अंतर्चेतना में इतने प्रगाढ़ रूप से अंतर्भूत है कि हम जाने-अनजाने इससे प्रेरित और परिचालित होते रहते हैं।"[1] इन लोक-विश्वासों के विस्तृत क्षेत्र पर गौर करने पर यह ज्ञात होता है कि कुछ ऐसे भी लोक विश्वास हैं जो समाज में नकारात्मकता को बढ़ावा देते हैं। ये वस्तुतः अंधविश्वास की श्रेणी में आते हैं। जैसे: डायन प्रथा, जादू-टोना, भूत-प्रेत आदि पर विश्वास करना। ऐसे अंधविश्वासों की जड़ें समाज के शिक्षित वर्ग की तुलना में अशिक्षित लोगों में अधिक मजबूत हैं।

वैसे तो लोक-विश्वास को अलग-अलग विद्वानों ने ग्रह-उपग्रहों, पशु-पक्षियों, प्राकृतिक उपादानों, मानव संबंधी धारणाओं आदि विविध आधारों पर वर्गीकृत किया है। परंतु अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से चाय जनगोष्ठी में प्रचलित लोक-विश्वासों का निम्न मुख्य आधारों पर विश्लेषण किया जा सकता है-

1. *धार्मिक लोक-विश्वास*

धर्म से संबंधित लोकविश्वास किसी भी समाज में मनाये जाने वाले विभिन्न पर्व-त्योहारों के अंतर्गत देखे जा सकते हैं। समय-समय पर आयोजित किये जाने वाले इन धार्मिक उत्सवों में प्रचलित रीति-रिवाजों, आचार-व्यवहार के माध्यम से धर्म और ईश्वर के प्रति उनकी प्रगाढ़ आस्था का सहज बोध होता है। सामान्य जन अपने रोग-व्याधि, विपदा आदि से निवारण के लिए तथा खुशहाल जीवन की कामना से आराध्य देव-देवी से मान-मनौती करते हैं। तमाम तरह के तंत्र-मंत्र और कर्मकांड का सहारा लेकर भविष्य की आशंकाओं को कम करने का प्रयास किया जाता रहा है। ऐसे ही कर्मकांड रूढ़ होकर संस्कृति का एक अभिन्न अंग बन जाते हैं। चाय जनगोष्ठी के श्रमिकजन अपने दैनिक क्रियाकलापों से लेकर विशिष्ट अनुष्ठानों में नाना शकुन-अपशकुन, उचित-अनुचित का ध्यान रखते हैं। इनके समाज में प्रचलित लोकपर्व- करम पूजा, टूचु पूजा, काली पूजा, दुर्गा पूजा, चारुल पूजा, ग्राम पूजा आदि में ऐसे अनेक लोक-विश्वास प्रारंभिक समय से प्रचलित हैं जो इस समाज की विशिष्टता को दर्शाते हैं। चाय जनगोष्ठी के जातीय पर्व 'करम' को लेकर उनके समाज में प्रचलित कई लोक-विश्वास हैं। करम पर्व को प्रमुख रूप से प्रकृति का उत्सव माना गया है। इसके विधिवत आयोजन के पीछे यह विश्वास है कि करम राजा प्रसन्न होकर मनवांछित फल प्राप्ति का आशीर्वाद देते हैं। करम पूजा वैसे तो तीन, पाँच अथवा सात दिनों तक चलती है परंतु इस पूजा के पहले दिन तरह-तरह के अनाजों (धान, गेहूँ, सरसों, चना, मटर आदि) को अभिमंत्रित कर उसकी पूजा की जाती है और जागरण गीत गाया जाता है। इसे 'झावा' जागरण कहते हैं। इस झावा के अच्छी तरह से अंकुरित होने को अच्छी फसल की प्राप्ति का संकेत माना जाता है। करम पूजा के दौरान आपसी कलह, मतभेद आदि से चाय श्रमिक दूर रहते हैं। अन्यथा करम देवता रूष्ट हो जाते हैं। करम पूजा में व्रत करने वाली लड़कियों (करमती) के लिए ठंडा भोजन ग्रहण करना अनिवार्य है। ऐसा विश्वास है कि व्रती कन्याओं द्वारा गर्म भोजन अथवा पेय का सेवन करने से अभिमंत्रित झावा (बीजांकुर) मुरझा जाते हैं जो अत्यंत अशुभ माना जाता है।

इसी तरह चाय श्रमिकों के समाज में टूचु पर्व का भी महात्म्य है। माघ महीने की संक्रांति के दिन मनाये जाने वाले इस टूचु पर्व को लेकर यह विश्वास है कि इसके आयोजन से महिलाओं को सतीत्व के मार्ग पर चलने की प्रेरणा और आशीर्वाद प्राप्त होता है, त्वचा संबंधी व्याधियों से निजात मिलती है तथा घर-परिवार में धन-धान्य की समृद्धि होती है। इस पूजा का आयोजन कम से कम तीन बार करना अनिवार्य माना गया है। अन्यथा अमंगल होने की आशंका बनी रहती है। टूचु पर्व को लेकर चाय जनगोष्ठी में यह भी विश्वास मान्य है कि इस पूजा के दिन टूचु देवी का नाम स्मरण कर जलायी गयी अग्नि की ताप का आम जनमानस में खास महत्व है। इसे सती टूचु देवी की चिता की अग्नि की मान्यता प्राप्त है। यह विश्वास है कि इस अग्नि की ताप को लेने से सभी दुःख, कलेश, नकारात्मकता का नाश होता है और समाज में प्रेम, भाईचारे की भावना का संचार होता है। ऐसी मान्यता है कि टूचु पूजा के विसर्जन के दिन प्रातः उठकर स्नान करना अनिवार्य है। ऐसा न करने पर मनुष्य का अगला जन्म सूअर के रूप में होता है।

चाय बागानों में किसी विशेष स्थान पर अथवा चाय श्रमिकों की बस्तियों में काली पूजा और दुर्गा पूजा को बहुत ही उल्लास से मनाया जाता है। यह भी देखा गया है कि तमाम आर्थिक तंगी के बावजूद ये श्रमिकजन यथाशक्ति देवी के स्वागत में पूजा का आयोजन करते हैं। इस समाज में काली और देवी दुर्गा की पूजा-अर्चना को लेकर अनेक लोक-विश्वास हैं। देवी काली की प्रतिमा और वेदी की स्थापना रात्रि के समय ही की जाती है। चाय जनगोष्ठी में यह विश्वास है कि दिन के प्रहर में काली देवी की पूजा करना वर्जित है। अन्यथा देवी क्रोधित होती हैं तथा उनके साथ आये भूत-प्रेत समस्त समाज का अमंगल करते हैं। देवी काली का नाम स्मरण कर जलाये गये पहले दीये की विशेष महत्ता है। कच्ची मिट्टी से अथवा पपीते को काटकर कच्चे धागे से इस दीये को प्रज्ज्वलित किया जाता है। इस दीये के बुझ जाने के बाद शेष तेल को घर के सभी सदस्य अपने शरीर में लगाते हैं। ऐसा लोक-विश्वास है कि वह दीया यदि किसी डायन के हाथ लग जाए तो वह तंत्र-मंत्र के सहारे परिवार का अहित कर सकती है। यहाँ तक विश्वास किया जाता है कि गृहस्थ को खून की उल्टियाँ होने लगती हैं और वह काल की चपेट में आ जाता है। काली पूजा के दौरान विवाहित महिलाएँ और युवतियाँ अपने केश बाँधकर नहीं रख सकती हैं। इससे देवी क्रोधित होती हैं। इसके अलावा देवी के विसर्जन के समय नवविवाहित महिलाएँ और अबोध बालकों का घर से बाहर निकलना निषेध है। दुर्गा पूजा के दौरान भी दुर्गा षष्ठी से लेकर विजया दशमी तक विशेष रीतियों का अनुसरण किया जाता है। चाय जनगोष्ठी के श्रमिक आवश्यकता पड़ने पर ऋण लेकर भी सपरिवार दुर्गा पूजा में नये वस्त्र पहनते हैं। ऐसा विश्वास है कि देवी दुर्गा

स्वर्ग लोक से अपने मायके (धरती) आती हैं। ऐसे में उनके स्वागत में विशेष आस्था और हर्ष व्यक्त करते हुए चाय श्रमिक सपरिवार नये कपड़े पहनकर उनकी पूजा और दर्शन के लिए जाते हैं। दुर्गा देवी के मायके आने की मान्यता को आत्मसात कर चाय जनगोष्ठी में दूर-दराज ब्याही बेटियाँ भी अपने माता-पिता से मिलने आती हैं। दुर्गा षष्ठी के दिन स्नान करते हुए साबुन का उपयोग करना पूर्णतः वर्जित है। अन्यथा देवी के चेहरे पर साबुन का झाग पड़ता है, ऐसा विश्वास है। पूजा के दिनों में चाय जनगोष्ठी के लोग माँसाहारी भोजन का सेवन अवश्य करते हैं। जनप्रचलित है कि देवी धरती पर आकर लोगों के बीच किसी भी तरह का अभाव, कलेश, हिंसा आदि न देखकर प्रसन्न होती हैं और इच्छित वर की प्राप्ति का आशीर्वाद देती हैं। इसी तरह विभिन्न पर्व-त्योहारों में अनेक लोक-विश्वासों का प्रचलन व्याप्त है।

***2.** संस्कारगत लोक-विश्वास*

मानव जीवन के प्रारंभ अर्थात् गर्भावस्था से लेकर मृत्यु तक की विभिन्न संस्कारगत गतिविधियों में अलग-अलग लोक-विश्वासों को देखा जा सकता है। प्रत्येक समाज के ये संस्कारगत लोक-विश्वास एक-दूसरे से भिन्न अथवा विशिष्ट हो सकते हैं। चाय जनगोष्ठी में किसी महिला के गर्भावस्था से लेकर, शिशु के जन्म, नामकरण, विवाह, अंत्येष्टि आदि संस्कारों में अनेक रीति-नीति प्रचलित हैं| इन रीतियों के आधार पीढ़ियों से चले आ रहे लोक-विश्वास हैं। वैसे तो किसी भी समाज में गर्भवती महिलाओं का विशेष ध्यान रखा जाता है। परंतु चाय जनगोष्ठी की कुछ महिलाएँ गर्भावस्था के दौरान भी चाय बागानों में श्रम करती हैं। ऐसे में घर के बाहर किसी भी तरह की नकारात्मक शक्ति अर्थात् भूत-प्रेत, डायन आदि के प्रभाव से बचाने के लिए तांत्रिक द्वारा दिये गए मंत्रबद्ध ताबीज़ को पहनाया जाता है। गर्भावस्था के दौरान दंपति के लिए किसी भी जीव की हत्या करना अशुभ माना जाता है। चाय श्रमिक समाज के कुछ लोग गर्भवती महिला की प्रसव पीड़ा को कम करने के लिए तांत्रिक द्वारा दिये गये अभिमंत्रित जल को पिलाते हैं। शिशु के जन्म के तुरंत बाद परिजन बर्तन, टेबल आदि को जोर-जोर से बजाने लगते हैं। ऐसा करने के पीछे यह विश्वास प्रचलित है कि बच्चा आगे चलकर बिजली की चमक, बादल के गरजने की आवाज से भयभीत नहीं होगा। माता और नवजात शिशु को भूत-पिशाच, डायन के दुष्प्रभाव से बचाने के लिए घर के मुख्य द्वार पर काँटेदार वृक्ष की टहनियाँ अथवा लोहे का कोई औजार लगाया जाता है। अधिकतर चाय श्रमिकों के बच्चों के माथे पर बड़े आकार का काजल का टीका, गले में ताबीज़ और कमर में काले धागे से सरसों, हल्दी की गाँठ आदि बाँधी जाती है। यह विश्वास है

कि इससे बच्चों को बुरी नज़र नहीं लगती। चाय जनगोष्ठी के कुछ-कुछ समुदायों में शिशु की पाचन शक्ति को मजबूत करने के उद्देश्य से बकरी का दूध भी पिलाया जाता है। इसी तरह अन्नप्राशन के दिन शिशु की मंगल कामना हेतु मुर्गी की बलि देने की भी रीति है।

चाय जनगोष्ठी के विवाह संस्कार में सुखद दांपत्य जीवन की कामना से बहुत से रीति-रिवाजों और लोक-विश्वासों को प्रधानता दी जाती है। इस समाज में वर और वधू पक्ष की दो ज्येष्ठ संतानों का विवाह होना अत्यंत अशुभ माना जाता है। विवाह के समय वर और वधू दोनों अपने हाथ में छुरी लिए होते हैं। ऐसा करने से बुरी नज़र नहीं लगती और भूत-प्रेत से भी रक्षा होती है। इसके अतिरिक्त नकारात्मक शक्तियों से प्रतिरोध हेतु विवाह के पश्चात् घर-परिवार अथवा आपसी संबंधियों में से सात पुरुष मिलकर धूप, नैवेद्य के साथ वर-वधू के विवाह के आसन पर सात बार अर्घ्य अर्पित करते हैं। जनप्रचलित है कि इससे इन्हें भविष्य की सभी बाधाओं, अमंगल दोषों से निवृत्ति मिलती है और पूर्वजों का आशीर्वाद प्राप्त होता है। ग़ौरतलब है कि विवाह की विदाई के पूर्व नवदंपति को आम के पेड़ के नीचे बैठकर आम खिलाने की प्रथा है और यह विश्वास प्रचलित है कि जिस पेड़ के नीचे इस रीति को निभाया जाता है, उस पेड़ के फल को खाना अशुभ होता है।

इसी क्रम में चाय जनगोष्ठी में अंत्येष्टि की पूरी प्रक्रिया के दौरान बहुत से लोक-विश्वास जुड़े होते हैं। विशेषकर हिंदू धर्म को मानने वालों में किसी व्यक्ति की मृत्यु के अलग-अलग कारणों के अनुरूप चाय जनगोष्ठी में शव का अंतिम संस्कार किया जाता है। जैसे: आत्महत्या से मृत्यु होने पर उसे दफनाया जाता है तो वहीं सर्प दंश से मृत्यु प्राप्ति होने पर शव को नदी में प्रवाहित करने की प्रथा है। ऐसा इस विश्वास के साथ किया जाता है कि वह व्यक्ति पुनः जीवित हो सकता है। चाय जनगोष्ठी में जनप्रचलित है कि किसी गर्भवती महिला की मृत्यु होने पर उसकी आत्मा शवयात्रा में सम्मिलित लोगों का अनिष्ट करती है। यह तो हुई किसी व्यक्ति के अकाल मृत्यु से संबंधित विश्वास। किन्तु इसके विपरीत चाय जनगोष्ठी में किसी वयोवृद्ध व्यक्ति की घर पर स्वाभाविक मृत्यु हो तो यह माना जाता है कि मृतक की आत्मा घर में भटकती रहती है। इसीलिए मृत्युमुखी व्यक्ति को घर के बाहर रखा जाता है। भटकती हुई आत्मा से बचने के लिए चाय जनगोष्ठी के लोग श्मशान में लोहे का कोई औजार जैसे छुरी, दाव आदि साथ रखते हैं। यह भी जन विश्वास है कि मृतक के परिजनों द्वारा अंत्येष्टि क्रिया की सभी विधियों का भली-भाँति पालन करने से मृतक की आत्मा को मुक्ति मिलती है। ऐसी मान्यता है कि दाह संस्कार के बाद मृतक की आत्मा तीन दिनों तक सुप्त अवस्था में रहती है। इसके बाद वह जागृत होते ही

अपने परिजनों के पास जाने को व्याकुल हो जाती है। इसीलिए उस दिन रात्रि के समय श्मशान के रास्ते में जाकर मृतक को भोजन देने की प्रथा है ताकि भोजन ग्रहण कर आत्मा तृप्त और शांत हो जाए। दसकर्म अर्थात् दसवें दिन मृतक की परछाईं को घर में लाया जाता है। यह विश्वास प्रचलित है कि इस 'छाँहिर आना' की रीति के दौरान किसी-न-किसी जीव के पैरों का निशान अंकित होता है। उसी आधार पर मृतक के अगले जन्म की प्राप्ति का पता लगाया जाता है। इसी दिन 'कांधकामी' अर्थात् शव को कंधा देने वालों के लिए इस विशेष परंपरा का निभाया जाना अनिवार्य माना जाता है। इसमें शव को कंधा देने वालों के सर से पैर तक एक मुर्गी से नजर उतारकर उसकी बलि दी जाती है और फिर उसके माँस के साथ शराब का सेवन किया जाता है। यह लोक-विश्वास है कि इस रीति के संपन्न होने के बाद शव को कंधा देने वालों के शरीर से नकारात्मक शक्तियों का प्रभाव खत्म हो जाता है। अन्यथा वे अकस्मात ही किसी भयंकर रोग से ग्रसित हो जाते हैं। चाय जनगोष्ठी में अन्येष्टि क्रिया के दौरान अलग-अलग जातीय समुदायों द्वारा किये जाने वाले रिवाजों में कमोबेश भिन्नताएँ यहाँ दृष्टव्य हैं। यथा- गोंड समुदाय में 'छाँहिर अना' प्रथा को 'बिवाना' कहा जाता है। शवदाह से दसवें दिन नदी अथवा तालाब से एक कलश में जल लाया जाता है। उस जल को घर के पूजन कक्ष में जमीन पर गिरा दिया जाता है। ऐसा विश्वास है कि उस स्थान पर जिस जीव के पैरों की छवि अंकित होती है, मृतक का अगला जन्म उसी जीव में हुआ मान लिया जाता है। इसी समाज में कुछ लोग कलश के जल में जीव की प्रतिच्छवि देखकर इस बात का संज्ञान लेते हैं। इतना ही नहीं उस जल में दूध और चीनी मिलाकर मृतक के सभी परिजनों को पिलाया जाता है। इस समाज के विशेषकर घटवार, राजवार, मिर्धा, कर्मकार आदि समुदायों में श्मशान से लौटने के बाद मृतक के घर पर तुलसी-जल से पवित्र होना अनिवार्य है। उसके बाद वहाँ से चाय पीकर ही अपने घर लौट सकते हैं। मुंडा समुदाय के लोग शव के ऊपर-नीचे बाँस से बने तख़्त को बाँधकर उसे दफ्नाते हैं। इस समाज के कुछ लोग शव के ऊपर बकरे का रक्त अथवा देशी शराब डालते हैं। तो वहीं साउरा जनजाति के लोगों में मृतक की आत्मा की शांति हेतु वार्षिक श्राद्ध का आयोजन कर बलि देने और नृत्य करने की परंपरा है। चाय जनगोष्ठी के लगभग सभी समुदायों में महिलाओं का श्मशान में जाना वर्जित है। इनमें हरि कीर्तन के माध्यम से मृतक की आत्मा के लिए भगवान श्रीहरि विष्णु की शरण-प्राप्ति की कामना की जाती है।

3. प्रकृति से संबद्ध लोक-विश्वास

वस्तुतः चाय जनगोष्ठी प्रकृति के सान्निध्य में अपना अधिकतर समय व्यतीत करने वाला समाज है। इनमें प्रकृति के विभिन्न उपादानों जैसे: पेड़-पौधे, जीव-जंतु, पशु-पक्षी, पहाड़, नदियाँ, पंचतत्व आदि से

संबंधित बहुत से लोक-विश्वास मौजूद हैं जो शुभ-अशुभ, शकुन-अपशकुन का संकेत देते हैं तथा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में इन चाय श्रमिकों के जीवन को प्रभावित करते हैं। चाय जनगोष्ठी के श्रमिकजन तथाकथित सभ्य समाज से अलग-थलग बागानों के बीच में बसायी बस्ती या कस्बे में रहते हैं। अतः यह कहना लेशमात्र भी गलत न होगा कि चाय श्रमिक अपना जीवन मूल रूप से पेड़-पौधों के बीच ही बिताते हैं; चाहे वह चाय के बागानों में श्रम करते हों अथवा खेत-खलिहानों में। इस कारण इस समाज में वनस्पतियों को लेकर विभिन्न लोक-विश्वासों का प्रचलित होना अत्यंत स्वाभाविक है। इस बात का प्रमाण हम करम पूजा में व्यवहृत कदंब और शाल के पेड़ को देख सकते हैं। यमुना किनारे श्रीकृष्ण कदंब की शाखा पर बैठकर मुरली बजाते थे। अतः इस पेड़ को अत्यंत शुभ मानते हुए इसमें करम देवता की उपस्थिति पर विश्वास किया जाता है। इसीलिए करम पूजा के समय 'करम डाल' अर्थात् कदंब की शाखा अथवा शाल वृक्ष की शाखा की पूजा की जाती है और मनवांछित फल प्राप्ति की कामना की जाती है। चाय जनगोष्ठी में केवल करम पूजा के आयोजन हेतु इस पेड़ को काटा जाता है। इसके अलावा इस पेड़ को काटना पूरी तरह से निषेध है। वैसे तो परिवार के किसी भी सदस्य से संबंधित किसी आकस्मिक घटना अथवा आकस्मिक मृत्यु को सपने में देखना अत्यंत अशुभ और मन को विचलित कर देने वाला होता है। ऐसी स्थिति में चाय जनगोष्ठी में इस 'करम' वृक्ष को लेकर यह विश्वास है कि इस पत्ते में चावल के बने 'पिठा' (एक तरह की घरेलू मिठाई) को खाने पर ऐसे दुःस्वप्न फलित नहीं होते। चाय जनगोष्ठी में विशाल वृक्षों को लेकर नकारात्मक भाव मौजूद हैं। वे इसमें भूत-प्रेत का वास मानते हैं। परन्तु बरगद, पीपल, बेल, शाल, आँहत (प्रमुख रूप से असम के जंगलों में उपलब्ध वनस्पति) आदि विशाल वनस्पतियों को शुभ मानते हैं तथा इसमें देव की उपस्थिति मानकर पूजा करते हैं। चाय जनगोष्ठी में *जात्रा सिद्धि* नामक पौधे के संदर्भ में यह विश्वास व्याप्त है कि इसे देखकर किसी भी काम के लिए निकलना अत्यंत शुभ और फलदायी होता है। इसीलिए चाय जनगोष्ठी के लोगों के घरों के मुख्य द्वार पर यह पौधा लगा होता है। इसके अतिरिक्त हल्दी, दूब, तुलसी आदि को बहुत ही शुभ माना गया है। इस समाज में धान को सभी फल/फसलों में और तुलसी को सभी वनस्पतियों में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। चाय जनगोष्ठी में प्रचलित एक अत्यंत प्रसिद्ध लोकगीत में इस बात का उल्लेख मिलता है-

"गाछेर मध्ये तुलसी
फलेर मध्ये धान....."[2]

चाय जनगोष्ठी में अच्छे फसल की प्राप्ति के लिए खेत-खलिहानों की भूमि की पूजा करने की भी प्रथा है। इसके अलावा समस्त ऊर्जा के स्रोत सूर्य की आराधना में सूर्याही पूजा का आयोजन किया जाता है। ऐसा विश्वास है कि सूर्याही पूजा के विधिवत समापन होने के बाद समाज से रोग-महामारी, डायन, भूत-पिशाच आदि सभी नष्ट हो जाते हैं। प्रकृति के अन्य पशु-पक्षियों को लेकर भी बहुत से लोक-विश्वास गढ़े गये हैं। इनका प्रचलन आज भी इस श्रमिक समाज में बरकरार है। विशेषकर पूजा-पाठ के अवसर पर बकरे तथा मुर्गे की बलि देकर आराध्य को प्रसन्न करने की चेष्टा की जाती है। यह जनप्रचलित है कि बलि के माध्यम से देव प्रसन्न होकर समाज और परिवार का कल्याण करेंगे। चाय जनगोष्ठी में अन्य जीव-जंतुओं को लेकर प्रचलित लोक-विश्वास प्रमुख रूप से मंगल-अमंगल का संकेत देते हैं। हिंदू धर्म के अनुयायी गाय को लक्ष्मी मानकर उसकी पूजा करते हैं। कार्तिक महीने में गौ-पूजन हेतु साँहराई पर्व का आयोजन चाय श्रमिकों के जीवन में गाय की महत्ता को स्पष्टतः प्रस्तुत करता है। यात्रा के दौरान गौ-दर्शन को बहुत ही शुभ फलदायक माना गया है। इसके अतिरिक्त चाय जनगोष्ठी में यह भी विश्वास किया जाता है कि किसी कारणवश यदि गाय क्रंदन करती है तो इसे किसी व्यक्ति के मृत्यु का संकेत समझा जाता है। इस समाज में गौ के वध को महापाप माना जाता है। किसी गाय के गले में रस्सी रहते हुए यदि उसकी मृत्यु हो जाती है तो उसे अत्यंत अशुभ माना जाता है। ऐसा होने पर उस गाय की अंत्येष्टि के बाद गाय के पगहे को लगभग एक महीने तक गृहस्थ अपने गले में धारण करता है और गाय की भाँति ही आवाज निकालता है। ऐसा न करने पर गृहस्थ पाप का भागी बनता है।

चाय जनगोष्ठी में साँप से संबंधित कई लोक-विश्वास मान्य हैं। जैसे: घर के अंदर यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो यह जनविश्वास है कि उसकी आत्मा साँप बनकर घर में कैद हो जाती है। कोई गर्भवती महिला को यदि स्वप्न में सर्प के दर्शन होते हैं तो यह माना जाता है कि उसे पुत्र रत्न की प्राप्ति होगी। परंतु कुछ लोग इसे प्रसव पीड़ा की अधिकता का सूचक भी मानते हैं। विशेषकर महिलाएँ रात्रि के समय साँप न कहकर रस्सी या लता कहकर संबोधित करती हैं। भूकंप होने पर ऐसा विश्वास प्रचलित है कि पृथ्वी को वासुकी नाग ने अपने फन पर धारण किया है। अतः साँप के हिलने-डुलने के कारण धरती में कंपन की स्थिति उत्पन्न होती है। इसी क्रम में अन्य कुछ प्राणियों के संदर्भ में प्रचलित लोक-विश्वास को देखा जाए तो इनमें प्रमुख रूप से कुत्ते का रोना, बिल्ली, चिड़ियाँ आदि का आपस में लड़ना, दिन के समय में लोमड़ी, सियार की आवाज आदि को चाय जनगोष्ठी में अत्यंत अशुभ और अमंगलकारक माना गया है। छिपकली का बोलना सत्य का प्रमाण अथवा सत्य के प्रतिफलित होने का संकेत समझा जाता है।

प्रकृति के सान्निध्य में जीवन व्यतीत करने वाले चाय जनगोष्ठी के लोगों में पक्षियों को लेकर विशेष धारणाएँ प्रचलित हैं। ये लोग कुछ पक्षियों को अत्यंत शुभ का सूचक मानते हैं। जैसे- कौए को पूर्वजों का दूत माना जाता है। खासतौर पर किसी व्यक्ति के श्राद्ध के अवसर पर मृतक का नाम लेकर दिये गये भोजन को यदि कौआ खा लेता है तो यह विश्वास किया जाता है कि उस भोजन को मृतक ने ग्रहण कर लिया। वैसे तो चमगादड़, चील, उल्लू, कौआ आदि का घर के अंदर प्रवेश करना अशुभ संकेत माना जाता है। परंतु उल्लू की कुछ मधुर आवाज को शुभ तथा कौए का दिन में काँव-काँव करना मेहमान के आने का सूचक होता है।

4. *अंधविश्वास*

चाय जनगोष्ठी में शिक्षा की कमी के कारण लोक-विश्वासों के साथ-साथ अंधविश्वास अत्यंत प्रबल है। धार्मिक या संस्कारगत लोक-विश्वासों को ही देखा जाए तो इनके पीछे डायन, भूत-प्रेत आदि सभी से बचाव हेतु तरह-तरह के कर्मकांड जुड़े हुए हैं। दरअसल, डायन प्रथा का आज के समय में होना किसी भी समाज के अति पिछड़े होने को दर्शाता है। यह समस्या सदियों पुरानी है। किसी भी महिला को डायन करार देकर उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। असमय मृत्यु, किसी महामारी अथवा दुर्घटना का जिम्मेदार उसी महिला को माना जाता है। यह स्थिति आज भी चाय जनगोष्ठी में विद्यमान है। यद्यपि अंचल विशेष अथवा समाज विशेष के संदर्भ में कुछ परिवर्तन देखे जा सकते हैं। जैसे कि कुछ-कुछ स्थानों पर चाय जनगोष्ठी के लोग डायन अथवा जादू-टोना जानने वाले व्यक्ति से खास दूरी बनाकर रहते हैं तो कुछ लोग सदैव मिल-जुल कर रहते हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद आपसी रंजिश, झगड़ा नहीं करते। कई स्थानों पर यह भी देखा गया है कि डायन और तंत्र-टोटका के जानकार व्यक्ति को घर बुलाकर जलपान, घरेलू शराब में शौच अथवा मल मिलाकर खिलाया जाता है। ऐसा करने से उस परिवार के किसी सदस्य पर तंत्र-मंत्र का असर नहीं होता। चाय जनगोष्ठी के प्रसिद्ध साहित्यकार श्री डिम्बेश्वर तासा जी अपनी पुस्तक 'चाय जनगोष्ठीर संस्कृति' में इस बात की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि "डायनी बुलि संदेह करा, जादू मंत्र जना लोक सकलक आदर-सादर करि माति आनि तेऊँलोकक खाबोलोई दिया जलपान, मद आदित मनुहर गू, पेशाब आदि संत्पर्ने मिहलाई खाबोलोई दिये। तेने करिले जादू-मंत्र जना ब्यक्तिजनर जादू-मंत्र आरु डायिनी जनर कोनो कामेई सिद्धि नहय।"[3] किसी अबोध बालक की मृत्यु पर यह विश्वास किया जाता है कि डायन अपनी तंत्र सिद्धि हेतु बच्चों का कलेजा खा जाती है जिसके कारण उनकी मृत्यु हो जाती है। इसी तरह भोजन दिये जाने पर अक्सर यह देखा जाता है कि थाली

से कुछ भोजन अपने पूर्वजों का नाम लेकर बाहर निकाल देते हैं। चाय जनगोष्ठी में यह विश्वास है कि इससे यदि भोजन में किसी प्रकार का टोटका किया गया हो तो वह निष्क्रिय हो जाता है। इस समाज में 'चरदेवा' प्रेत की बहुत प्रासंगिकता है। चाय जनगोष्ठी के तांत्रिक चरदेवा भूत को अपने अधीन रखते हैं। इस भूत के सिर में जटाएं होती हैं और ये आकार में बौने होते हैं। तांत्रिक के आदेशानुसार ये भूत धन और फसल की चोरी करते हैं। जनप्रचलित है कि जिस घर में भूत रहते हैं उस परिवार में सदैव धन-धान्य की कमी का सामना करना पड़ता है।

5. *विविध विषयक लोक-विश्वास*

अन्य मानव समुदायों की तरह चाय जनगोष्ठी में भी रसोई घर की सामान्य-सी किसी वस्तु, यात्रा, दिन, महीना, पुरुष-महिला के शारीरिक गठन, रोग-महामारी, कृषि आदि विविध संदर्भों से संबंधित लोक-विश्वास हैं। ये लोक-विश्वास किसी भी तरह की धार्मिक मान्यताओं पर आधारित नहीं होते हैं। मात्र कुछ संकेतों के आधार पर गढ़े जाते हैं तथा शुभ-अशुभ के प्रति भय और अज्ञानता के कारणवश ये समाज में रूढ़ हो जाते हैं। चाय जनगोष्ठी में यात्रा से संबंधी ऐसे बहुत से लोक-विश्वास हैं जो शुभ-अशुभ के सूचक हैं। जैसे: यात्रा पर निकलने के दौरान पीछे से आवाज नहीं लगाया जाता है। परंतु माता यदि पीछे से आवाज लगाती है या कुछ कहती है तो उसे शुभ माना जाता है। वैसे तो बिल्ली के रास्ता काटने को लगभग सभी लोग अपशकुन मानते हैं। परंतु चाय जनगोष्ठी में काली बिल्ली और कुत्ता यदि रास्ते के बीच से गुजर जाए तो उसे अनहोनी का संकेत माना जाता है। लेकिन नेवले का यात्रा पथ से गुजरना शत्रु के पराजय को इंगित करता है। इसके अतिरिक्त यात्रा के दौरान एक मैना का दिख जाना, छींकना तथा भिखारी के दर्शन होने को बेहद अशुभ माना जाता है। यह विश्वास है कि इससे यात्रा का मनोरथ पूरा नहीं होता। लेकिन कोई चिड़ियाँ यदि जोड़े में दिखे तथा हाथी, वेश्या, गाय आदि के दिखने को यात्रा की सफलता का सूचक माना जाता है।

चाय श्रमिकों में घर की रसोई में बर्तनों का हाथ से गिर जाना किसी करीबी अथवा अतिथि का अकस्मात् आगमन समझा जाता है। चावल अथवा धान को चाय श्रमिक अत्यंत शुभ मानते हैं। विभिन्न पर्व-त्योहारों, मांगलिक अनुष्ठानों में चावल से पूजा की जाती है। चावल के चूर्ण से 'अल्पना' अंकित की जाती है। चाय जनगोष्ठी में चावल, धान में पैर स्पर्श नहीं होने दिया जाता है। यहाँ तक कि चावल को साफ करने वाले डाला, सूप आदि को भी पैर नहीं लगाया जाता। कारण कि इससे धन-धान्य की समृद्धि में कमी होने लगती है। रात्रि के समय चाय श्रमिक किसी को भी धान अथवा चावल उधार में नहीं देते हैं। इससे घर की लक्ष्मी चली

जाती है। इस समाज में संध्या के बाद हाथी, साँप, हल्दी, सिंदूर, सूई आदि का नाम लेना वर्जित है। अक्सर चाय श्रमिक इसके स्थान पर हाथी को गणपति का रूप मानकर श्रद्धावत् बाबा, साँप को रस्सी, हल्दी के लिए रंग, सिंदूर के लिए पुष्प आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। चाय जनगोष्ठी के लोग बिना स्नान किये किसी भी शुभ कार्य में सम्मिलित नहीं होते हैं। चाय जनगोष्ठी में महिलाओं से संबंधित बहुत से लोक-विश्वास मान्य हैं। जैसे: पत्नियाँ अपने पति को नाम लेकर संबोधित नहीं करतीं। ऐसा विश्वास है कि विवाह के पश्चात नाम लेने से पति की आयु कम होती है। जिन महिलाओं के चलने पर धम-धम की आवाज होती है अर्थात् जो महिलाएँ विनम्रता और नाज़-नखरे से नहीं चलतीं उसे कुलक्ष्मी माना जाता है। यहाँ तक कि जो लड़कियाँ इस तरह जोर-जोर आवाज करते हुए चलती हैं उनसे कोई शादी नहीं करना चाहता है। इसी तरह से महिलाओं के शारीरिक गठन को लेकर और भी लोक-विश्वास मौजूद हैं। यथा: जिन लड़कियों के दाँत अलग-अलग हों, ललाट अधिक उठे हुए हों, सिर गोल न हो तो ऐसी महिलाओं को अमांगलिक माना जाता है। विधवा स्त्रियों से भी संबंधित अनेक लोक-विश्वास प्रचलित हैं। किसी शुभ कार्य के अवसर पर विधवा स्त्री का चेहरा दिख जाना अत्यंत अशुभ माना जाता है। ये महिलाएँ किसी भी मांगलिक अनुष्ठान में भागीदारी नहीं कर सकती हैं। रंग-बिरंगे वस्त्र भी इनके लिए कई बार वर्जित मन जाता है। पति के दिवंगत होने के बाद उसे सादा जीवन ही व्यतीत करना पड़ता है। हालाँकि आजकल इसमें कमी आयी है। कुछ-कुछ विधवा महिलाएँ भी रंगीन कपड़े पहनने लगी हैं। खाद्य सामग्रियों में विशेषकर अंडा और दूध को लेकर यह विश्वास है कि इसे चोरी करके खाने पर कुष्ठ रोग हो जाता है। इसीलिए चाय जनगोष्ठी में कदाचित अंडा, दूध को चुराकर नहीं खाते हैं।

जन्मदिवस को लेकर भी एक बड़ी विशिष्ट बात यह है कि सप्ताह में जिस भी दिन किसी व्यक्ति का जन्म हुआ हो वह उस दिन अपने नाखून, बाल आदि नहीं कटवाता। इसे अशुभ माना जाता है तथा उस व्यक्ति की आयु में कमी होती है। इसके अलावा मंगलवार, शनिवार को भी नाखून और बाल नहीं कटवाते हैं। पूस के महीने में चाय जनगोष्ठी के लोग कोई भी शुभ कार्य नहीं करते हैं। इसी कारण पूस महीने के खत्म होते ही माघ की संक्रांति के दिन टूचु पूजा का आयोजन किया जाता है। इसके बाद से सभी प्रकार के शुभ कार्य किये जा सकते हैं। चाय श्रमिकों में आज भी विविध रोगों को लेकर यह विश्वास व्याप्त है कि रोग अथवा महामारी आदि शरीर में भूत-प्रेत के आगमन के कारण होते हैं। इसी कारण ये लोग रोगी को चिकित्सालय न ले जाकर तांत्रिक के पास झाड़-फूँक के लिए ले जाते हैं। आज भी टायफॉयड, मलेरिया के रोगी को तंत्र-मंत्र और तमाम तरह के कर्मकांड के सहारे ठीक करने की कोशिश जारी रहती है। चाय जनगोष्ठी में 'चिड़कुनी' नामक भूत पर विश्वास

करते हैं। किसी व्यक्ति को ज्वर होने पर यह विश्वास किया जाता है कि उसके शरीर पर चिड़कुनी भूत ने आश्रय लिया है। इससे निवृत्ति हेतु तांत्रिक तेल, चावल, फूल आदि को लाल कपड़े में बाँधकर उससे रोगी की नज़र उतारता है। फिर उस पोटली को किसी चौराहे पर फेंक देता है। गले में टाँसिल बढ़ जाने पर चाय जनगोष्ठी में यह विश्वास प्रचलित है कि यह रोग गाय के गोबर में थूकने के कारण होता है। जिससे रोगी को गले में भयंकर पीड़ा होती है तथा उसका पानी पीना तक दूभर हो जाता है। इसी तरह आँखों में दर्द, आँखों का लाल हो जाना, पलकों पर फोड़ा होना आदि को लेकर यह विश्वास है कि जब व्यक्ति किसी कुत्ते को शौच करते देख लेता है तो वह ऐसे रोगों से पीड़ित हो जाता है। इस प्रकार आँखों से संबंधित परेशानियों से बचने के लिए उस समय अपनी पलकों से एक-दो बाल निकलकर उसे थूँककर फेंका जाता है।

इस तरह चाय जनगोष्ठी की सामान्य जीवन शैली, आचार-व्यवहार, नीति-सदाचार आदि में बहुत से लोक-विश्वास अंतर्निहित हैं जो वस्तुतः इस समाज में शुभ-अशुभ, शकुन-अपशकुन के फल के निर्णायक हैं। तार्किकता से कोसों दूर इन लोक-विश्वासों की परिधि इतनी विस्तृत है कि इसमें समस्त चराचर जगत समाहित है। पूरे जगत का कोई भी कोना इन लोक-विश्वासों से अछूता नहीं है। ध्यातव्य है कि चाय जनगोष्ठी में शिक्षा की कमी के कारण भय और अज्ञानता की जड़ें इतनी गहराई तक पहुँची हुई हैं कि कई बार विश्वास और अंधविश्वास दोनों समभूमि पर नजर आते हैं। ये लोक-विश्वास चाय जनगोष्ठी के न केवल अशिक्षित वर्ग को प्रभावित करते हैं बल्कि शिक्षित वर्ग भी इससे अछूते नहीं रहते हैं।

संदर्भ सूची-

1. कृष्णदेव उपाध्याय, भारतीय लोक-विश्वास, पृष्ठ संख्या. 05
2. डिम्बेश्वर तासा, चाह जनगोष्ठीर संस्कृति, पृष्ठ संख्या. 39
3. वही, पृष्ठ संख्या. 54

4.4 चाय जनगोष्ठी के विभिन्न संस्कार

प्रकृति सृजनशील है। समूचे संसार की गतिविधियाँ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रकृति द्वारा ही संतुलित एवं संचालित होती हैं। कवि विद्यापति जी के शब्दों में कहें तो 'तोहे जनमि पुनि तोहे समाओब' वाली बात बिल्कुल सटीक बैठती है। अर्थात् सभी भौतिक उपादानों का उत्स भी प्रकृति ही है तथा सभी उपादान पुनः उसी में विलीन हो जाते हैं। यथा मानव, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे आदि सभी पंचतत्वों से बने होते हैं और प्रकृति द्वारा निर्धारित एक निश्चित अवधि के बाद इन्हीं पंचतत्वों में इनका समावेश हो जाता है। यह प्रकृति का नियमित चक्र है जिससे इहलोक-परलोक, समस्त ग्रह-गोचर में संतुलन बना रहता है। आम जनभाषा में इसे ही विधि का विधान कहा जाता है। प्रकृति के सर्वश्रेष्ठ सृजन मनुष्य ने सभ्य, संवेदनशील समाज की स्थापना कर प्रकृति के साथ साहचर्य-भाव स्थापित किया। विशेषकर नारी के गर्भोत्पत्ति से प्रकृति की सृजन शक्ति और पुष्ट होती है। मातृत्व-पद को प्राप्त कर नारी अपने पूर्ण रूप में निखरती है। यही विशेष क्षमता नारी को प्रकृति के समकक्ष लाती है। इस तरह से जन्म-मृत्यु के क़वायद में प्राणी निरंतर गतिशील रहता है। इस पूरी प्रक्रिया और काल-अवधि के दौरान प्रत्येक समाज में कुछ विशिष्ट मान्यताओं और नीतियों का प्रचलन देखा जाता है। वस्तुतः ये ही संस्कारगत विधियाँ हैं। संस्कार कहने मात्र से इस बात का सहज बोध होता है कि मानव-जन्म के पूर्व से ही अर्थात् गर्भ में आने की स्थिति से लेकर अंत्येष्टि क्रिया तक के पूरे सफर में वैदिक पद्धति से किये जाने वाले विविध विधि-विधान ही संस्कार हैं। इन सभी विधियों के पीछे कुछ न कुछ वैज्ञानिक तर्क भी होते हैं जिनका मूल उद्देश्य मनुष्य में सात्विक गुणों का उद्वेग तथा दोषों से मुक्ति है। कुलमिलाकर संस्कारों के मूल में मानव और समाज के कल्याण की भावना निहित है। धार्मिक और वैज्ञानिक मान्यताओं व तर्क से युक्त इन संस्कारों ने भारतीय संस्कृति को अधुनातन सिद्ध करने के साथ ही उसकी प्रासंगिकता को जीवंत रखा है।

विशेषतः सनातन संस्कृति की बात की जाए तो प्राचीन समय में कुल चालीस संस्कारों का प्रचलन था। परन्तु समय के परिवर्तन के साथ वर्तमान युग में कुल सोलह संस्कारों की प्रासंगिकता व्याप्त है। इन षोडश संस्कारों में गर्भाधान, पुंसवन, सीमांतोनयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म अथवा मुंडन, विद्यारंभ, कर्णभेद अथवा कर्णवेध, यज्ञोपवीत, वेदारंभ, केशांत, समावर्तन, विवाह, अंत्येष्टि प्रमुख हैं। वैसे तो ये षोडश संस्कार निर्धारित किये गये हैं परंतु आज के संदर्भ में देखें तो इन संस्कारों के प्रचलन में काफी कमी आयी है। आजकल समाज में नामकरण, अन्नप्राशन, मुंडन, विवाह, अंत्येष्टि आदि संस्कारों का ही अधिकाधिक प्रचलन दिखायी पड़ता है। असम की चाय जनगोष्ठी में भी इन संस्कारों के विविध रूपों को थोड़े-

बहुत बदलाव के साथ देखा जा सकता है। असम की चाय जनगोष्ठी भाषाई और जातिगत विविधता के बरअक्स एक समन्वित समाज है। तमाम जातिगत और संस्कृतिगत सम्मिश्रण के बावजूद इस मजदूर समुदाय के नाना पर्व-त्योहारों और संस्कारों में छिटपुट अंतर होना लाज़िमी है। अलग-अलग जाति अथवा जनजाति के अनुरूप इनमें कुछ मान्यताएँ और रीति-नीति प्रचलित हैं। चाय जनगोष्ठी के श्रमिक समाज में इस आधार पर दो तरीके के लोग हैं। पहले, वे लोग जो केवल वेदाचार का अनुसरण करते हैं। ये कुलीन वर्ग कहलाते हैं। दूसरे वर्ग के लोगों के लिए पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही लोक मान्यताएँ ही वेद-वाक्य हैं। यही कारण है कि चाय जनगोष्ठी के विविध संस्कारगत गतिविधियों में अलग-अलग लोकाचार और जनविश्वास मौजूद है। चाय जनगोष्ठी समाज में महिला के गर्भवती होने के बाद उसका यथोचित ध्यान रखा जाता है। विशेषकर नकारात्मक प्रभाव से जच्चा और बच्चा को बचाने के लिए तरह-तरह की मान्यताओं और विश्वासों का अनुपालन देखा जाता है। चाय जनगोष्ठी में प्रचलित विविध संस्कारगत विधि-विधान यहाँ उल्लेखनीय हैं-

* *छटि (छठी)*

चाय जनगोष्ठी में नवजात शिशु के जन्म के बाद काफी छुआ-छूत माना जाता है। शिशु का जन्म घर में हो चाहे अस्पताल में; उस घर को 'छोवा' घर कहा जाता है। उस घर-परिवार का शुद्धिकरण संस्कार हुए बगैर आस-पड़ोस, आत्मीय जन कोई भी उस घर में प्रवेश नहीं करता। यदि किसी आवश्यकतावश उस घर में जाना पड़ा तो अपने घर में प्रवेश करने से पूर्व किसी पोखर अथवा कुँए के पानी से नहा-धोकर तुलसी की पत्तियों से शुद्धिकरण करने की परंपरा है। ऐसी भी मान्यता है कि नवजात शिशु के परिजनों ने यदि किसी पेड़ अथवा पौधे का स्पर्श कर दिया तो पेड़-पौधे बेजान हो जायेंगे। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि ऐसी मान्यताएँ बिल्कुल तर्कपूर्ण नहीं होती हैं परन्तु चाय जनगोष्ठी में आज भी ऐसी अनेक मान्यताएँ अपनी जड़ों को सुनिश्चित किये हुए हैं।

नवजात शिशु तथा उसकी माता जिसे चाय जनगोष्ठी में 'पोवाती' कहा जाता है; दोनों को सपरिवार जन्म से नौवें दिन नाई को बुलाकर महिलाओं के नाख़ून तथा पुरुषों को बाल, नाखून, आदि सभी कटवाकर शारीरिक स्वच्छता बरतनी पड़ती है। इतना ही नहीं नवजात शिशु का मुंडन संस्कार भी उसी दिन करने का रिवाज है। नवशिशु के मुंडन के बालों को केले के नये कोंपले पर रखकर किसी अच्छे स्थान पर मिट्टी में गाड़ दिया जाता है और पूरे घर को बुहारकर, गोबर-मिट्टी से पुताई की जाती है। इस दिन सभी आत्मीय जनों तथा आस-पड़ोस के लोगों को निमंत्रित कर 'छोवा गुसुवा' अर्थात् शुद्धिकरण संस्कार का आयोजन करने की रीति

प्रचलित है। यद्यपि चाय जनगोष्ठी के शिक्षित वर्ग आज कल नौ दिन के कोमल शिशु का मुंडन प्रतीकात्मक ढंग से ही करते हैं। जन्म से इक्कीसवें दिन 'एकईसा अथवा छटि' संस्कार आयोजित किया जाता है। इसी दिन चाय जनगोष्ठी में बच्चे का नामकरण संस्कार भी कर दिया जाता है। इस समाज में नामकरण की भी विशेष प्रक्रिया है। छटि संस्कार में उपस्थित सभी सगे-संबंधी, समाज के वरिष्ठ जन, पड़ोसी आदि की उपस्थिति में शिशु के नामकरण की विधि प्रारंभ की जाती है। इस दौरान चावल के आटे से अल्पना बनाकर वहीं शिशु को रख दिया जाता है। उसके बाद गोबर, हल्दी से रंगे चावल, तुलसी, दूब, सिन्दूर आदि रखकर उस स्थान पर तेल अथवा घी से दीप प्रज्वलित किया जाता है। समाज के वयोवृद्ध पुरुष उस स्थान पर काँसे के लोटे में तुलसी, दूब आदि डालकर एक-एक चावल के दाने को पानी में डालते हुए अलग-अलग नाम का उच्चारण करते हैं। ऐसी मान्यता है कि जिस नाम के उच्चारण के साथ चावल का दाना लोटे के पानी के ऊपर दूब और तुलसी के साथ तैरने लगता है, उसी नाम को बच्चे के लिए शुभ मानकर समाज द्वारा स्वीकृत और प्रचलित कर दिया जाता है। नामकरण की ऐसी अनोखी पद्धति शायद ही किसी अन्य जनसमाज में प्रचलित होगी। परंतु चाय जनगोष्ठी के कुलीन वर्ग के लोगों में ब्राह्मण द्वारा जन्म तिथि के आधार पर ही शिशु का नामकरण करते देखा जाता है। चाय जनगोष्ठी में छटि संस्कार को एक उत्सव की तरह मनाते हुए उस दिन आमंत्रित सभी अतिथियों के साथ इकट्ठे भोजन तथा देशी शराब (हाड़िया/चुलाई) ग्रहण करते हैं। और, अंत में डमकच तथा झुमुर गाते-नाचते 'छटि उत्सव' का समापन होता है।

* *अन्नप्राशन*

शिशु के उचित शारीरिक और बौद्धिक विकास के लिए चाय जनगोष्ठी में भी अन्नप्राशन संस्कार का आयोजन देखा जाता है। शिशु के थोड़े बड़े होते ही उसके शरीर को अन्य पोषक तत्वों की भी आवश्यकता होती है। अतः उचित अवसर देखकर सगे-संबंधियों तथा समाज के बड़े-बुजुर्गों को आमंत्रित कर शिशु को पहली बार अन्न खिलाकर आशीर्वाद दिया जाता है। ऐसे में सर्वप्रथम शिशु को अन्न अर्थात् दूध-भात अथवा खीर उसके मामा ही खिलाते हैं। चाय जनगोष्ठी में बच्चे के जन्म के लगभग एक साल बाद किसी शुभ तिथि को अन्नप्राशन संस्कार का आयोजन किया जाता है। इसी दिन बहुत से लोग कुल देवता के स्थान पर मुर्गी की बलि देकर संतान के लिए शुभ फल की कामना करते हैं।

* *कर्णवेधन*

इसे आमभाषा में 'कान, नाक बिंधुवा उत्सव' कहते हैं। चाय जनगोष्ठी में लड़कों के कान और लड़कियों के कान और नाक दोनों में आभूषण पहनाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि इसके बाद कोई उस बच्चे की बलि नहीं दे सकता। परन्तु यह एक संस्कार के रूप में बड़े ही हर्ष के साथ चाय जनगोष्ठी के 'भूमिज', 'गोवाला' समुदाय में खास तौर पर प्रचलित है। इस संस्कार का विधिवत पालन न करने पर इन्हें समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। परन्तु चाय जनगोष्ठी के अन्य जातिगत समूहों में इसे एक संस्कारगत उत्सव की तरह मनाना अनिवार्य नहीं है। विशेषकर पुरुषों के कर्णवेधन का प्रचलन लगभग नहीं के बराबर है। चाय जनगोष्ठी में भूमिज, गोवाला आदि समुदाय की बात की जाए तो इस दिन सभी रिश्तेदार, समाज तथा आस-पड़ोस के लोग सामूहिक रूप से एकत्र होकर इस संस्कार समारोह में शरीक होते हैं तथा उपहार स्वरूप तेल और सिन्दूर देने का रिवाज है। इस दिन घर के आँगन को गोबर से पुताई कर शुद्ध किया जाता है फिर उसी स्थान पर बच्चे को बैठाकर बेल, नींबू आदि के काँटे से कान में छेद कर आभूषण पहनाया जाता है। गृहस्थ के साथ-साथ आमंत्रित सभी अतिथिगण दीप प्रज्वलित कर पान, दूब, तुलसी आदि से उस बच्चे की आरती करते हैं और फिर माथे पर तेल तथा दोनों कानों में सिंदूर लगाकर शगुन के पैसे भी देते हैं। इस प्रकार चाय जनगोष्ठी में कर्णवेधन संस्कार संपन्न होता है।

* *फूलशादी या छट' (छोटो) शादी*

चाय जनगोष्ठी में लड़कियों का पहली बार ऋतु-चक्र प्रारंभ होने को एक उत्सव की तरह मनाया जाता है। इस लोकानुष्ठान को फूलशादी कहते हैं। जिस तरह ऋतु परिवर्तन के बाद प्रकृति की रूप-छटा में परिवर्तन की सहज प्रतीति हो जाती है, ठीक वैसे ही लड़कियों पर ऋतु-प्रभाव अर्थात् मासिक-चक्र के प्रारंभ होने पर शारीरिक और मानसिक परिवर्तन का सहज ही बोध हो जाता है। यद्यपि इस समाज के कुलीन वर्ग इस संस्कारगत लोकानुष्ठान का आयोजन नहीं करते बल्कि कुछ प्रचलित नियमों का ही पालन करते हैं। माहवारी के सात दिन तक उस युवती को घर के अन्दर एक कमरे में रखा जाता है ताकि परिवार अथवा आस-पड़ोस के पुरुषों की नजर न पड़े। ऐसी मान्यता है कि पहली बार ऋतु-चक्र से प्रभावित युवती पर किसी पुरुष की दृष्टि पड़ने से हानि होती है। फिर सातवें दिन परिवार की ज्येष्ठ महिला द्वारा तीन या पाँच कुँओं से पानी लाकर किशोरावस्था से युवावस्था की ओर अग्रसर युवती को नहलाया जाता है। नये वस्त्रादि पहनाकर अच्छा भोजन, पकवान, मिष्टान्न, आदि खिलाया जाता है तथा पुराने वस्त्र को नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है। घर-द्वार सभी

जगह गोबर और मिट्टी से पुताई कर शुद्धिकरण किया जाता है। उसी दिन रात्रि में सभी सगे-संबंधी और पड़ोसी आत्मीयजन इक्कठे होकर भोजन ग्रहण करते हैं तथा डमकच गीतों को गाते हुए ढांक, ढोल, मादल आदि की ताल पर नृत्य करते हैं। इस अवसर पर चाय जनगोष्ठी के समाज में प्रचलित लोकगीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"चंपा फूल रसिक
मते किया डाके उठिया डाक
टाटियार पानी झक मक्
ल चंपाफूल रसिक"[1]

उद्धृत पंक्तियों के माध्यम से ऋतु-चक्र के प्रभाव से नारी देह और मन में होने वाले परिवर्तनों की ओर संकेत किया गया है। पंक्तियों से आशय है कि जिस तरह चंपा फूल के खिलने पर सभी का मन सहज ही उसके सौंदर्य के प्रति आकर्षित होता है; ठीक उसी प्रकार ऋतु-चक्र के प्रभाव से किसी भी बालिका का तन यौवन की पूर्णावस्था की ओर अग्रसर होने लगता है। वह लड़की अब एक युवती के पूर्ण गठन को प्राप्त करने लगती है। अतः चंपा फूल की तरह ही उसका शरीर विशेषकर पुरुष के आकर्षण का केंद्र बन जाता है। साथ ही उस युवती की भी पुरुष के प्रति आकर्षण की संभावना काफी बढ़ जाती है। इसीलिए इस प्रकार के आकर्षण के नकारात्मक प्रभाव से बचने की आवश्यकता का बोध कराते हुए इस गीत को गाया जाता है। यह एक आम बात है कि लड़कियों का मासिक-चक्र प्रारंभ होते ही प्रायः सभी लोग इस प्रकार की सावधानी बरतते हैं और लड़कियों को तमाम तरह की सावधानियों का बोध कराया जाता हैं।

फूलशादी का प्रचलन चाय जनगोष्ठी के कुलीन वर्ग में बहुत ज्यादा नहीं है बल्कि अकुलीन वर्ग अर्थात् वे लोग जो वेद, शास्त्रों का अनुसरण नहीं करते, मूलतः परंपरागत रीतियों को ही मानते हैं तथा सामाजिक रूप से इस विवाह का आयोजन करते हैं। चाय जनगोष्ठी में यह भी मान्यता है कि फूलशादी में गृहस्थ द्वारा कराये गये भोजन को युवा लड़के ग्रहण नहीं करते हैं कारण कि ऐसा करने से सिर के बाल स्वतः झड़ने लगते हैं। यह मात्र एक अंधविश्वास है जिसका तर्क और वास्तविकता से कोई वास्ता ही नहीं है। वर्तमान समाज का शिक्षित वर्ग इस प्रकार के अंधविश्वासों को सिरे से ख़ारिज करता है। चाय जनगोष्ठी में फूलशादी की परंपरा में असमिया समाज का प्रभाव देकाजा सकता है। असमिया समाज में फूलशादी को ही 'तुलनी बिया' कहा जाता है। यह असमिया समाज में प्रचलित एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्कार है तथा बड़े ही उत्साह और हर्ष के साथ इसका आयोजन किया जाता है।

* *विवाह*

चाय जनगोष्ठी में अन्य समुदायों की ही तरह वैवाहिक अनुष्ठान का सामाजिक महत्व सर्वाधिक है। इस श्रमिक समाज में विभिन्न रीति-नीति और मान्यताओं के साथ वर-वधू के मंगलमय भविष्य की कामना की जाती है। वर-वधू के नव दाम्पत्य जीवन के साथ ही दो अलग-अलग परिवारों का भी सामाजिक साहचर्य स्थापित होता है। जीवन के सुख-दुःख के क्षणों में अथवा कठिन से कठिन परिस्थितियों में प्रेम, साहचर्य तथा समर्पण के साथ वर-वधू अपने कुल को आगे बढ़ाते हैं। इसीलिए विवाह जैसे शुभ तथा मांगलिक अनुष्ठान का हर्षोल्लास के साथ विधिवत आयोजन होता है। चाय जनगोष्ठी में विवाह संस्कार के अवसर पर प्रचलित विभिन्न रीति-रिवाजों में पानी भरा, आम्बा बिया, महुवा बिया, पिन्धानी, माड़वा गाड़ा, नख चिनान काटा, तेल-हल्दी माखा, लगन, चुमान, सिंदरा दान, माड़वा घुरा, कहबर, बिदाई आदि प्रमुख हैं। चाय जनगोष्ठी के विवाह संस्कार से संबंधित सभी रीति-रिवाजों में विधिवत लोक गीतों, मान्यताओं और विश्वासों का खूब प्रचलन है।

चाय जनगोष्ठी में विवाह योग्य किशोर-किशोरी का लग्न तय होने पर वर और कन्या दोनों ही पक्षों के वरिष्ठ व्यक्तियों द्वारा कपड़े में ताम्बुल (कच्ची सुपारी) और पान बाँधकर तोड़ा जाता है। फिर उस कच्ची सुपारी और पान को आपस में सभी मिल-बाँटकर खाते हैं इसे 'गुवा भंगा या गुवा चुपा' कहते हैं। यह प्रथा वर और कन्या पक्ष की विवाह के प्रति स्वीकृति व सहमति का सूचक है। इसके बाद वर पक्ष से पाँच, सात अथवा नौ (अयुग्म संख्या में) लोग कन्या के घर जाकर शगुन की रस्म अदा करते हैं। इसमें मूलतः कन्या को वस्त्रादि, साज-श्रृंगार की सभी चीजें, नारियल, दही, नाना मिष्टान्न आदि (चाय जनगोष्ठी समाज में इसे 'दधिभार' कहा जाता है) भेंट स्वरूप दी जाती है। कन्या उपहार में मिले वस्त्रादि पहनकर परवर्ती विधियों के लिए बाहर आती है। घर के आँगन में चौकोर 'अल्पना' अर्थात् चावल के आटे को घोलकर बनायी गयी रंगोली में सिंदूर से तिलक कर 'चुमान' की विधि हेतु मंडप तैयार किया जाता है। कन्या उस मंडप के पाँच फेरे लगाकर मंडप में बैठती है। इस दौरान एक महिला कन्या के आगे-आगे कलश में पानी लेकर थोड़ा-थोड़ा छिड़कती जाती है। यह मान्यता है कि इस प्रकार जल के छिड़काव से कन्या के वैवाहिक जीवन की सारी मलिनता समाप्त हो जाती है। इसके बाद वर पक्ष के सभी वरिष्ठ लोग शंख और उरुली की मांगलिक ध्वनि के साथ 'चुमान' प्रथा प्रारंभ कर धूप-दीप, नैवेद्य आदि से युवती की आरती करते हैं। उत्तर भारतीय प्रदेशों में चुमावन की विधि की तरह ही चाय जनगोष्ठी में चुमान की प्रथा का प्रचलन है। अंतर केवल इतना है कि चाय जनगोष्ठी के समाज में चुमान

के समय चावल को सिर के चारों ओर घुमाते हैं तथा पान की पत्ती दोनों हाथों में लेकर दीये की लौ से उसे सेंका जाता है फिर उससे कन्या के क्रमशः पैर, घुटने, कंधे और गालों पर लगाते हुए चुमान की विधि पूरी की जाती है। यही विधि वर के लिए भी प्रचलित है।

चाय जनगोष्ठी में चुमान की विधि संपन्न होने के बाद एक शुभ मुहूर्त देख कर वर-कन्या की विवाह तिथि सुनिश्चित कर दी जाती है। सर्वप्रथम वर के परिजन 'लगन' लेकर कन्या के घर जाते हैं। लगन की विधि में वर-पक्ष का वरिष्ठ व्यक्ति आम के पत्ते पर रंगीन चावल, बेल की पत्ती अथवा दूब को बाँधकर कन्या-पक्ष के वरिष्ठ व्यक्ति को देते हैं। इस विधि के बाद सात घरों से पानी लाने की प्रथा है। इस पानी से वर अथवा कन्या को दो से अधिक रास्तों के मिलन स्थल पर नहलाया जाता है। लगन की विधि से लेकर विवाह तक प्रतिदिन वर और वधू दोनों को तेल-हल्दी लगाया जाता है। इसी बात का उल्लेख करते हुए हल्दी की रस्म के दौरान गाये जाने वाले लोकगीत की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"हरद रे हरद
बार बछरे हरद
माख-माख दुलहा कइना
ससुर ननद"[2]

चाय जनगोष्ठी में लगन की विधि के बाद से वर-वधू के हाथ या वस्त्र में लोहे की कोई चीज जैसे चाकू, छुरी आदि बाँध दी जाती है। ऐसी मान्यता है कि इससे किसी भी अमंगल, अपशकुन, नज़र दोष अथवा नकारात्मक शक्तियों से निवृत्ति मिलती है। चाय जनगोष्ठी में विवाह का आयोजन अधिकतर घरों में 'माड़वा' (विवाह-मंडप) बनाकर होता है। इनमें जो लोग माड़वा बनाते हैं अथवा विवाह की वेदी को सजाते हैं उन्हें यथाशक्ति नेग देने की परंपरा है। विवाह के दिन वर और वधू दोनों के घर बहन, भाभी आदि महिलाएँ "चलरे सखी जलके जाब"[3] इस तरह के नाना गीतों की पंक्तियों को दोहराते हुए नदी या तालाब से जल लेने जाती हैं। इसे 'पानीतुला' अथवा 'जलचहा' रस्म कहते हैं। इस विधि के समय नदी अथवा तालाब की पूजा कर आशीष रूपी जल लेकर उससे वर और वधू को नहलाया जाता है। चाय जनगोष्ठी की महिलाएँ इस अवसर पर आपस में हास्य-व्यंग्य करती नजर आती हैं। इसके बाद ही विवाह की अन्य विधियाँ प्रारंभ होती हैं। चाय श्रमिक समाज के कुछ समुदायों में 'आम्बा बिया', 'महुआ बिया' का प्रचलन है। अविवाहित वर और वधू को क्रमशः आम और महुआ के पेड़ से विवाह करना पड़ता है। उसके बाद ही वर-वधू का विवाह संपन्न किया जाता है। ऐसा जनविश्वास है कि पेड़ से विवाह करने से पुण्य मिलता है तथा भविष्य मंगलमय हो जाता है। अन्यथा प्रकृति रुष्ट

हो जाती है और आगामी जीवन सुखमय नहीं होता है। अतः आम के पेड़ को नारी का प्रतीक मानकर भविष्य में पुत्र प्राप्ति की कामना से वर का विवाह संपन्न कराया जाता है। वहीं वधू महुआ के पेड़ को अपना स्वामी मानते हुए एक पराक्रमी पति की कामना करते हुए उससे विवाह करती है। इसके अलावा कुछ लोगों में अविवाहित वर-वधू को आम-महुआ खिलाने की प्रथा है। ऐसा माना जाता है कि इससे वर-वधू के नव दांपत्य संबंध अत्यंत सुदृढ़ होता है।

चाय जनगोष्ठी में विवाह के अवसर पर नये वस्त्र, नाना आभूषणों आदि से सुसज्जित वर-वधू के विवाह संस्कार के संपन्न होने की अंतिम कुछ विधियाँ बहुत महत्व रखती हैं। इसके बाद ही वर-वधू आजीवन दांपत्य सूत्र में बंध जाते हैं। चाय जनगोष्ठी में अन्य समाज की भाँति सिंदूरदान और सात फेरे अत्यंत प्रासंगिक और महत्वपूर्ण हैं। अतः वर अपने सभी आत्मीय संबंधियों के साथ विवाह के लिए वधू के घर जाता है। वधू के घर भी उतनी ही आत्मीयता से सभी बारातियों का स्वागत-सत्कार होता है। इस दौरान मंगल ध्वनि स्वरूप ढोल, मादल, ढांक, नागरा (नगाड़ा), धुमसा, शहनाई, पेंपा आदि का वादन होता है और वधू के परिजन धूप-दीप से वर का 'चुमान' तथा आरती करते हैं। विवाह मंडप में वर-वधू ईश्वर का स्मरण करते हुए विधिवत पूजा-अर्चना और हवन करते हैं। वर वधू की माँग में सिंदूर भरकर 'सिंदूरदान' की विधि संपन्न करता है। तदुपरांत हवन की अग्नि को साक्षी मानकर वर-वधू सात फेरे लेते हैं। सात फेरों के सात वचन एक-दूसरे को देते हुए मंडप में रखे शिला के टुकड़े और कच्ची सुपारी तथा पान को पैरों से स्पर्श करने की परंपरा चाय श्रमिक समाज में सदियों से प्रचलित है। इसे 'सप्तपदी' कहा जाता है। इसके साथ ही वर-वधू का विवाह संस्कार संपन्न हो जाता है।

चाय जनगोष्ठी में विवाह के बाद 'कहबर' की प्रथा का प्रचलन है। चाय जनगोष्ठी में वर और वधू को राम-सीता, शिव-पार्वती का रूप माना जाता है तथा वर-वधू के सुखी, मंगलमय भविष्य की कामना करते हुए कहबर की विधि की जाती है। विवाह के बाद नये जोड़े को कहबर की रस्म के लिए ले जाया जाता है। उस समय बड़ी बहन घर की दीवार पर चावल के आटे और सिंदूर से छवि अंकित करती है। ऐसी मान्यता है कि वह छवि प्रेममय दांपत्य-सूत्र में बँधे वर-वधू की होती है। और, इसे अंकित करने के पीछे यही कामना होती है कि नव दम्पति के जीवन में राम-सीता, शिव-पार्वती की तरह स्नेह और साहचर्य का सूत्र मजबूत हो। इन्हीं भावों से निहित कहबर की विधि के दौरान चाय जनगोष्ठी में प्रचलित गीत की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"कन तोर गाढ़ल झिलिमिली रे माड़वा

कने तोर लिखले रामचंद्रे कहबर

बहनाई तोर गाढ़ल झिलिमिली रे माड़वा

दीदी तोर लिखलाई रामचंद्रे कहबर।"[4]

(चित्र संख्या 4.2: कहबर प्रथा)

विवाह के पश्चात बेटी की विदाई का क्षण अत्यंत दारुण होता है। जिस घर में बेटी पली-बढ़ी होती है उस घर-परिवार को छोड़कर जाना उसके तथा समस्त परिजनों के लिए असह्य तथा पीड़ा दायक होता है। विवाह संस्कार की सबसे कठिन व करुण बेला विदाई की होती है। इसका आभास चाय जनगोष्ठी में विदाई की बेला पर प्रचलित गीतों में सहज रूप से मिलता है। यथा-

"आँगना का दूबी घाँह, देखि बाढ़ली
चले गेल बाबा हरइनी मिरगिया
मतइ रोव भईया
सेंदूर त'र शपतो
काजल त'र शपतो।"[5]

गीत की पक्तियों के माध्यम से विदाई की बेला पर नवविवाहिता की तथा उसके परिजनों की मनोदशा का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। दूब और घास के माध्यम से वधू के अपने घर-परिवार के प्रति लगाव को व्यक्त करते हुए कहा गया है कि घर की सभी परिस्थितियों को देखते हुए हर्ष-विषाद सभी क्षणों में साथ रहने वाली घर की हिरणी अर्थात् कोमल व चंचल व्यक्तित्व वाली कन्या का विदा होकर पराये घर जाना परिजनों के हृदय को विह्वल कर देता है। परन्तु समाज की इस रीति का अनुसरण करते हुए नवविवाहिता स्वयं को सांत्वना देती है तथा अपने भाई, माता-पिता सभी को सिन्दूर और काजल की शपथ देकर उनके क्रंदन को रोकना चाहती है।

और, इस तरह चाय जनगोष्ठी में विभिन्न रीति-नीति और मान्यताओं में कमोबेश अंतर के साथ मिलन-विरह भाव से संसक्त विवाह संस्कार संपन्न होता है।

* *अंत्येष्टि*

अंतिम निःश्वास के बाद मानव जीवन का कार्यकाल समाप्त हो जाता है। जीवात्मा उस जन्म के सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है। प्रत्येक धर्म, जाति और समुदाय के अनुकूल अंतिम संस्कार के अवसर पर अनेक मान्यताएँ तथा रीति-नीति प्रचलित हैं। इन्हीं जनप्रचलित मान्यताओं और नीति-नियमों का अनुसरण करते हुए समाज में विधिवत अंत्येष्टि क्रिया के माध्यम से मानव देह को पंचतत्वों को अर्पित कर दिया जाता है तथा आत्मा की चिर शांति हेतु कामना की जाती है। असम की चाय जनगोष्ठी में भी शवदाह अथवा दफनाये जाने से लेकर श्राद्ध तक विविध सांस्कृतिक गतिविधियों के द्वारा अंत्येष्टि क्रिया का समापन होता है।

चाय जनगोष्ठी में अलग-अलग जाति व धर्म के लोगों का समूह होने के कारण इनके समाज में प्रचलित सभी संस्कारगत मान्यताओं में भी विभिन्नता मौजूद है। चाय जनगोष्ठी में दाहसंस्कार के अतिरिक्त शव को दफनाने की भी प्रथा प्रचलित है। इस्लाम और इसाई धर्मावलंबियों के अतिरिक्त हिंदू लोगों में भी सर्प दंश, नाबालिक और गर्भवती के मृत्यु होने पर उनका शव दाह न करके, दफनाने की रीति है। चाय जनगोष्ठी के श्रमिक समाज में मनुष्य के अंतिम श्वास के पहले उसे नीचे जमीन पर लिटा दिया जाता है और उस स्थान पर धूप-दीप जलाकर कष्ट से निवृति की कामना की जाती है। मृत्योपरांत शव को सबसे पहले तेल और हल्दी लगाकर नहलाया जाता है तथा कच्चे बाँस की शय्या पर रखकर हरि नाम लेते हुए शवयात्रा निकाली जाती है। चाय जनगोष्ठी के कुछ समुदायों में शवयात्रा के दौरान रास्ते भर धान तथा सरसों छीटने की भी प्राचीन परंपरा प्रचलित है। श्मशान पहुँचकर वहाँ के देवता से मृतक के नाम मिट्टी खरीदकर ही अंतिम क्रिया की जाती है। ऐसी मान्यता है कि इससे मृतक व्यक्ति पर किसी तरह का कर्ज़ नहीं रह जाता। मुखाग्नि हेतु मृतक के शव को उत्तर या पश्चिम दिशा की ओर सर करके लिटाया जाता है तथा सभी आत्मीयजन, शुभचिंतक आदि चिता को जलाने अथवा दफनाने में सहभागिता करते हैं। चाय जनगोष्ठी में मुखाग्नि हेतु आमतौर पर आम अथवा बेल की सूखी शाखा का ही प्रयोग देखा गया है। मृतक का पुत्र अथवा पुत्र-तुल्य व्यक्ति बंद आँखों से चिता की तीन बार परिक्रमा कर मुखाग्नि देता है। चाय जनगोष्ठी में अंतिम संस्कार में शरीक होने वाले सभी लोग अपने साथ लोहे का औजार अथवा कोई भी लौह शिल्प लेकर ही श्मशान में जाते हैं। इसके पीछे की वजह यह है कि भूत-प्रेत अथवा कोई भी नकारात्मक शक्ति हानि न पहुँचा सके। अंतिम संस्कार के समाप्त होने पर सभी लोग किसी

न किसी काँटेदार पेड़ की शाखा को लाँघकर ही श्मशान से बाहर निकलते हैं। फिर किसी घाट पर नहा-धोकर तुलसी जल तथा आग से शुद्धिकरण किया जाता है। इसके बाद ही घर में प्रवेश करते हैं।

चाय जनगोष्ठी में मृत्यु के तीसरे दिन 'तिलनी', दसवें दिन 'दहा' और श्राद्ध का विधिवत आयोजन किया जाता है। मृत्यु के तीसरे दिन अर्थात् तिलनी के दिन उबले हुए चावल यानी 'भात' में नीम की पत्तियाँ डालकर खाने की प्रथा है। तिलनी से लेकर दहा तक प्रत्येक दिन मृतक को आहार दिया जाता है। ऐसी मान्यता है कि मृतक की आत्मा तिलनी के बाद जागृत हो जाती है तथा अपने आत्मीय जनों को तलाशती हुई भटकने लगती है। ऐसे में जब आत्मा घर की तरफ आती है तो शवयात्रा के दिन फेंके गये धान, सरसों और प्रतिदिन उसके नाम पर दिये गये आहार को पाकर संतुष्ट हो जाती है तथा स्वजनों का अहित नहीं करती। चाय जनगोष्ठी के कुछ लोग तिलनी न कर मृत्यु के दूसरे दिन 'दूधमही' का आयोजन कर मृतक को खीर का भोग लगाते हैं। दसवें दिन 'घाट या दहा' का आयोजन होता है। यदि मृतक कोई छोटा बच्चा हो तो घाट की सभी विधियाँ मृत्यु के पाँचवें अथवा सातवें दिन संपन्न कर दी जाती हैं। घाट के दिन मृतक के परिजनों का मुंडन होता है और सभी महिलाएँ अपने नाखून कटवाती हैं। घाट अथवा दहा की सारी विधियाँ नदी के किनारे संपन्न की जाती हैं। चाय जनगोष्ठी के कुछ समुदायों में यह देखा जाता है कि दहा के दिन 'कांधकामी/कांधकाठी' नामक एक छोटी-सी विधि करते हैं। शवयात्रा के दौरान कांधा देने वालों चारों पुरुषों को घर में किसी एक निश्चित स्थान पर बैठाकर उनके कंधे से लेकर पैरों तक नज़र उतारने की मुद्रा में एक मुर्गी को उतारा जाता है। उस दौरान प्रत्येक से तीन-तीन बार पूछा जाता है कि 'कांधकामी/कांधकाठी नामलेक् न नाइ' (कांधकामी/कांधकाठी उतर गया?); प्रत्युत्तर में 'नामलेक' (उतर गया) कहा जाता है। फिर उस मुर्गी का माँस देशी शराब के साथ खाते हैं। इसके पीछे ऐसा जनविश्वास है कि इस विधि को करने से जिन लोगों ने शव को कांधा दिया था, उनके कंधे में कोई बड़ी बीमारी नहीं होगी।

चाय जनगोष्ठी में श्राद्ध के दिन सामूहिक रूप से समाज के सभी आत्मीय जनों को आमंत्रित कर भोजन कराया जाता है। परन्तु श्राद्ध का भोजन तैयार होते ही पाँच या सात लोग मिलकर मृतक के नाम से घास-फूस का एक छोटा-सा घर तैयार करते हैं और उसी में मृतक की आत्मा को भोजन दिया जाता है। भोजन देने के पश्चात् उस घर को जलाकर मृतक की भटकती हुई आत्मा से विदा ली जाती है। इस प्रथा को 'छाँहिर अना' कहते हैं। ऐसी मान्यता है कि 'छाँहिर अना' प्रथा के माध्यम से मृतक के नवजीवन का ज्ञान होता है। यह जनविश्वास है कि जो लोग मृतक को भोजन देने जाते हैं उनके पीछे मृतक की आत्मा अपने परिजनों के पास

आती है। अतः जब सभी लोग लौट आते हैं तो मृतक के परिजनों से तीन बार पूछते हैं 'घरमे कण आहे; जागल ना शुतल' (घर में कौन है? जगे हैं या सो गये?)। प्रत्युत्तर में परिजनों में से कोई वरिष्ठ कहता है 'भीम जागल, अर्जुन सुतल अथवा राम जागल, लक्ष्मण सुतल।' इस तरह घर के बाहर से मृतक की भावनाओं को स्पष्ट करते हुए कहा जाता है कि इतने दिनों से उसकी आत्मा दुर्गम वनों, पहाड़ों आदि में भटक गयी थी। आज घर आने का सही मार्ग मिला। अब वह अन्यत्र कहीं नहीं जाएगा। इसके बाद मृतक के परिजन घर के द्वार पर धूप-दीप जलाते हैं। उस दौरान मृतक की आत्मा घर के अन्दर प्रवेश करती है; यह जनप्रचलित धारणा सदियों से चली आ रही है। परिवार का ज्येष्ठ और प्रमुख व्यक्ति मृतक की आत्मा का वशीकरण करता है। इससे आत्मा किसी का अनिष्ट नहीं साध सकती बल्कि परिवार को सकुशल रखती है। उस दौरान वहाँ बालू रख दिया जाता है। चाय जनगोष्ठी में यह भी मत प्रचलित है कि बालू पर जिस प्राणी के पैरों का निशान अंकित होता है, मृतक उसी शरीर को धारण करता है। इस तरह से श्राद्ध की विधि का समापन होता है। ध्यातव्य है कि चाय जनगोष्ठी के कुलीन वर्ग 'छाँहिर अना' प्रथा को नहीं मानते। अपितु मृतक के अस्थि-कलश को डिमरू पेड़ की शाखा में लटका दिया जाता है। श्राद्ध तक नित दिन उसकी पूजा और परिक्रमा की जाती है। उसके बाद ब्राह्मण द्वारा विधिवत उस अस्थि कलश को नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त नाना जाति समूहों में अंत्येष्टि क्रिया की विधियों और मान्यताओं में भिन्नता है। कुछ लोगों में मृत्यु वार्षिकी अथवा छह महीने पूरे होने पर बलि देने की भी प्रथा मौजूद है। मुंडा समुदाय के लोग शव के ऊपर-नीचे बाँस की मचिया बाँध कर उसे दफना देते हैं; आदि जैसी जनप्रचलित नाना धारणाएँ और रीतियाँ हैं जिसके बाद अंत्येष्टि क्रिया का पूर्णतः समापन होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि चाय जनगोष्ठी में प्रचलित विभिन्न संस्कारगत अनुष्ठानों में जाति व समुदाय के अनुकूल भिन्न मान्यताएँ और परम्पराएँ प्रचलित हैं। इस समाज के ये संस्कारगत नियम चाय जनगोष्ठी की संस्कृति को विशिष्ट बनाते हैं।

संदर्भ सूची-

1. शुकदेव अधिकारी, चाह जनगोष्ठीर लोकगीत लोक परंपरा आरु उत्सवर रूपरेखा, पृष्ठ संख्या. 74
2. वही, पृष्ठ संख्या. 59
3. वही, पृष्ठ संख्या. 62
4. प्रकाश कुर्मि, झिलिमिलि माड़वा, पृष्ठ संख्या. 14
5. शुकदेव अधिकारी, चाह जनगोष्ठीर लोकगीत लोक परंपरा आरु उत्सवर रूपरेखा, पृष्ठ संख्या. 65

4.5 चाय जनगोष्ठी की लोक कलाएँ

लोक कलाएँ मूलतः मानव द्वारा सृजित कलात्मक सौंदर्य हैं जिनका आधार प्रयोजन और उपयोगिता है। मानव ने अपनी बौद्धिक सृजनात्मकता के सहारे प्रयोजनानुकूल विभिन्न लोक कलाओं को जन्म दिया। समय के साथ मानव सभ्यता विकसित हुई तथा ये लोक कलाएँ विस्तार पाकर और अधिक परिष्कृत हुईं। देशज प्रतीकों और बिंबों को आधार बनाकर निर्मित ये लोक कलाएँ वस्तुतः उपयोगी कला के अंतर्गत आती हैं। ये लोक कलाएँ नित दिन मानव जीवन को सरल, सुविधाजनक और व्यवहारजन्य बनाती हैं। लोक संस्कृति की अमूल्य धरोहर इन लोक कलाओं का स्रष्टा कोई एक व्यक्ति विशेष न होकर समस्त समाज होता है जिसका एकाधिक पीढ़ियों में संवहन होता है। बद्री नारायण के शब्दों में "सभी पारंपरिक कलाएँ लोक कलाएँ हैं, क्योंकि ये सर्वसम्मत एवं निर्विवादित जन की रचना हैं।"[1] वास्तव में इन लोक कलात्मक प्रतीकों के माध्यम से किसी भी समाज की जीवन शैली, लोकाचार, सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य सहज रूप में अभिव्यक्त होते हैं। असम की चाय जनगोष्ठी में भी इन लोक कलात्मक प्रतीकों की भरमार है। भारत के भिन्न प्रान्तों की अलग-अलग संस्कृति और भाषाई पृष्ठभूमि वाले चाय श्रमिक असम आने के दौरान अपने साथ विरासत में मिट्टी की खुशबू, वहाँ की संस्कृति और कला लेकर आये। असम के चाय बागानों में दिन भर की कमरतोड़ मजदूरी कर घर लौटने के बाद ये श्रमिकजन अपनी तकलीफ, कुंठा, वंचना आदि को कुछ कम करने के लिए गीत-संगीत का सहारा लेते थे। इन भिन्न-भाषी श्रमिकों के परस्पर सांस्कृतिक विलयन के कारण इनके साहित्य और कला में भी सम्मिश्रण व्याप्त है। इसी कारण चाय जनगोष्ठी की कला और संस्कृति विशिष्ट होने के साथ ही समृद्ध भी है। इसके अतिरिक्त असमिया संस्कृति और कला की छाप चाय जनगोष्ठी की लोक कलाओं में सहज ही देखी जा सकती है। इस समाज में विभिन्न जाति, उपजाति और जनजातीय समाज के लोग हैं जो मूल रूप से चाय उद्योग से जुड़े हुए हैं परंतु इससे इतर जाति के अनुरूप कर्म का जो विभाजन अन्य समाज में देखा जाता है वह कमोबेश इन चाय श्रमिकों में भी विद्यमान है। जैसे कुम्हार, लोहार, बुनकर, बढ़ई आदि जाति के लोग चाय बागानों में काम करने के अलावा अपनी जाति के अनुरूप नियत पेशे से भी जुड़े होते हैं। मिट्टी, धातु, बाँस, बेंत, वृक्ष के छाल आदि से तरह-तरह की लोक कलाओं का निर्माण-कार्य जारी रहने से ही इसकी जीवंतता कायम है। वास्तव में ये लोक कलाएँ चाय जनगोष्ठी के सामाजिक-आर्थिक संघर्षों के बरअक्स इनकी कालात्मक बौद्धिकता का परिचय देती हैं।

चाय जनगोष्ठी में प्रचलित लोक कलाएँ इस श्रमिक समुदाय की दैनंदिन जीवन शैली, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक पहलुओं को प्रतीकों के माध्यम से स्पष्टतः अभिव्यक्त करती हैं। इनकी लोक कलात्मक शैलियों को स्पष्टतः जानने-समझने हेतु निम्न श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-

* *वास्तु कला*

मानव ने अपने प्रयोजन के अनुकूल परिवेश हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रव्रजन किया। दरअसल, मानव सभ्यता विभिन्न स्थानों पर स्थानांतरित होकर ही विकसित हुई। अपनी आवश्यकताओं और रुचियों को ध्यान में रखते हुए नये-नये आविष्कारों को जन्म दिया। इसके निमित्त एक ही उद्देश्य था- यथोचित सुविधाजनक जीवन यापन करना। हम देखते हैं कि आदिम मानव प्रारंभ में पहाड़ी गुफाओं में वास करता था। समय की गति और अपनी बौद्धिक क्षमता के बल पर उसने समतल भूमि की ओर प्रव्रजन किया। गुफाओं के स्थान पर पेड़ की लकड़ियों, घास-फूस से अपना वासस्थान निर्माण करना प्रारंभ किया। इसी प्रक्रिया का विकसित रूप बाद में हम महलों और मीनारों के रूप में और आज ऊँची-ऊँची बहुमंजिली इमारतों के रूप में देखते हैं। असम की चाय जनगोष्ठी भी मूलतः भारत के विभिन्न राज्यों से प्रव्रजित श्रमिकों का समूह है जो चाय बागानों में श्रमरत हैं। इस बात से हम सभी परिचित हैं कि इन चाय श्रमिकों को ब्रिटिश सरकार तमाम तरह के झूठे वायदे कर असम ले आयी थी। ये दरिद्र, बेरोजगार श्रमिक एक अच्छे जीवन की प्रत्याशा में अपने मूल स्थान को छोड़ असम की ओर चल पड़े। ऐसे में असम आकर इन श्रमिकों के न रहने का ठिकाना था और न ही कोई साधन। 'कुली लाइन्स' अथवा 'लेबर लाइन' कहे जाने वाले चाय श्रमिकों की बस्ती में ये चाय श्रमिक अपने रहने हेतु झुग्गी-झोपड़ियों का निर्माण कर गुजर-बसर कर रहे हैं। वास्तु कला के अंतर्गत चाय जनगोष्ठी में मौजूद इन्हीं झुग्गी-झोपड़ियों, कच्चे मकानों, बस्तियों में स्थापित देवालयों को देखा जा सकता है। इनकी आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय होती है कि इन्हें बाँस से बनी कच्ची झोपड़ी में गुज़ारा करना पड़ता है। बाँस को पतले-पतले आकार में काट कर उससे ही घर की चहारदीवारी बनायी जाती है और फिर उसमें मिट्टी-गोबर के मिश्रण से पुताई कर बिल्कुल परिष्कृत, चिकना और सुघड़ बनाकर रहने के अनुकूल कर दिया जाता है। ऊपर टिने अथवा घास-फूस, *टको* वृक्ष के पत्तों की छावनी दी जाती है। कुछ स्थायी श्रमिकों को बागान प्रबंधन की ओर से मकान मिलते हैं। लेकिन वहीं चाय बागानों में प्रबंधकों, बाबू-साहब आदि लोगों को ओहदे के अनुसार बंगला मुहैया

करवाया जाता है। चाय जनगोष्ठी में प्रचलित गीतों में इन चाय श्रमिकों के घरों का उल्लेख मिलता है जिसमें इनके अति कष्टप्रद जीवन की छवि झलकती है। पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"बूढ़ा नाना कोरे पानी आला काम
गिरेला टिपिक-टिपिक घाम
केनो बुझे पाबे चा मजदूर के
बीतेला कइसे दिन-काल?
पानीर गिरोल घर, भिजोल कोंबोल
कांपेला देहा थोर-थोर रे
मोई नाई कोरबो पाता तुला काम रे
मोई नाई कोरबो कोलोम काटा काम रे"[2]

गीत की पंक्तियों में चाय श्रमिकों के पीढ़ियों से चाय उद्योग से जुड़ाव को दर्शाया गया है। ये चाय मजदूर धूप, बारिश, जाड़े आदि सभी परिस्थितियों में चाय उद्योग तथा चाय के बागानों में श्रम करते हैं। अर्थात् इन पर मौसम के अनुकूल अथवा प्रतिकूल रूप का कोई असर नहीं होता। परंतु इनके जीवन की विडंबना ऐसी है कि कठिन परिश्रम के बाद भी इनके दैनिक जीवन में सुधार की कोई संभावना नजर नहीं आती है। इनके घर कच्चे होते हैं। जिसके कारण बारिश के मौसम में घर के अंदर पानी टपकने लगता है। जाड़े के दिनों में एक तो ठंड की मार सताती है, इसके ऊपर बारिश में घर की छावनी से पानी का गिरना और कंबल भीग जाना वास्तव में चाय श्रमिकों की आर्थिक, सामाजिक दशा को स्पष्टतः दर्शाता है। इसीलिए इस गीत के माध्यम से चाय श्रमिकों की परवर्ती पीढ़ी इस पेशे को छोड़ने की ओर इशारा करती है।

(चित्र संख्या 4.3: ग्राम थान)

(चित्र संख्या 4.4: मनसा थान)

चाय जनगोष्ठी में वैसे तो मंदिर अथवा कोई विशेष धार्मिक स्थल पहले बहुत अधिक नहीं थे। लेबर लाइन्स में या चाय बागानों में देवालयों बाँस के सहारे टिने की छावनी देकर खुला छोड़ दिया जाता है। कुछ स्थानों पर मिट्टी की गोल आकृति भी बनी होती है। खासतौर पर ऐसे स्थानों में ग्राम पूजा आदि का आयोजन कर चाय श्रमिक एकजुट होकर पूजा-अर्चना करते हैं और ढोल, मादल आदि के ताल पर झुमुर नृत्य कर आनंदित होते हैं। हालिया स्थिति यह है कि चाय श्रमिकों के इलाके में भी देवालयों की स्थापना होने लगी है। ये और बात है कि वे धार्मिक स्थल कच्चे अथवा पक्के भी हो सकते हैं। कुलमिलाकर यह उनकी सामूहिक आर्थिक क्षमता पर निर्भर है। चाय जनगोष्ठी में वास्तु कला के क्षेत्र में असम के परिवेश, स्थानीय संस्कृति तथा कला का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। असम के 'नामघर' (असमिया संस्कृति में ईश्वर के नाम स्मरण हेतु सार्वजनिक स्थल) की ही तरह चाय बागानों देवी के नाम स्मरण हेतु 'थान' की स्थापना की गयी है जिसका ढाँचा कुछ-कुछ नामघरों से मिलता-जुलता है।

* *मृत्तिका शिल्प/ मृत्तिका कला*

प्रारंभिक अवस्था में आदिम मानव सीप, जानवरों की खोपड़ी आदि का उपयोग अपने दैनिक व्यवहार में किया करते थे। कुछ समय के बाद प्रयोजन के अनुरूप सर्वप्रथम मिट्टी से ही शिल्प गढ़ना प्रारंभ हुआ। यह बात ध्यान देने योग्य है कि प्रारंभिक समय में मिट्टी के शिल्पों (बर्तन, रोशनदान आदि) का आकर सुनिश्चित नहीं था। कालावधि में मनुष्य की सृजनात्मक कला और बौद्धिक क्षमता से इन शिल्पों का रूप परिष्कृत हुआ। इन शिल्पों के अधिक समय तक उपयोग और संरक्षण को ध्यान में रखते हुए आग में पकाया जाने लगा ताकि इनमें ठोस सामग्रियों के अतिरिक्त तरल पदार्थों को रखा जाना संभव हो। इस तरह लोक कलाओं की भिन्न श्रेणियों में मृत्तिका कला का एक महत्वपूर्ण स्थान है। परंतु इस बात को भी नजरंदाज नहीं किया सकता कि तथाकथित आधुनिकीकरण और महानगरीय जीवन जीने की लालसा ने हमारे वास्तविक जीवन-यापन के तौर-तरीकों और मायनों को प्रभावित किया है। हमारी अंश्चेतना में इन विशिष्ट कलाओं की उपयोगिता दोयम दर्जे पर आसीन हुई लेकिन आज भी ग्रामीण सभ्यता यानी लोकमानस में इन शिल्प कलाओं की उपस्थिति है। असम राज्य के 'नतुन असमिया' कहे जाने वाले चाय श्रमिकों के जनजीवन में मिट्टी से निर्मित अलग-अलग शिल्प कलाओं की प्रासंगिकता आज भी विद्यमान है। चाय जनगोष्ठी में खासकर कुम्हार, कुंभकार और हाँडी या हीड़ा आदि जाति के लोग मूलतः मृत्तिका कला से संबद्ध हैं। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि सबसे

पहले इन्हीं जातीय समष्टि के लोगों ने मिट्टी के शिल्प गढ़ने प्रारंभ किये और इनका उपयोग किया। बहरहाल, अधिकांशतः चाय श्रमिकों के घरों में आज भी मिट्टी के चूल्हे पर खाना बनाया जाता है तथा मिट्टी से निर्मित विविधाकार बर्तनों का उपयोग किया जाता है। इस समाज में प्रचलित मृत्तिका कला के अंतर्गत नाना शिल्पों का विवरण इस प्रकार है-

- कलश अथवा कलशी: कलश या कलशी, मटकी से आकार में छोटा किंतु आकृति में बिल्कुल वैसा ही होता है। कलश में ढक्कन की व्यवस्था होती है। चाय जनगोष्ठी के लोग चाय बागानों में काम करने अथवा जंगलों में जब शिकार हेतु जाते हैं तब पीने के लिए पानी ले जाया करते हैं। पूजा-पाठ में भी कलश की विशेष प्रासंगिकता है। अलग-अलग रंग से चित्रकारी कर इसमें पूजा का जल रखा जाता है।
- मटकी अथवा मूटकी: चाय जनगोष्ठी में मटकी का प्रयोग *लाउपानी* तथा *हाड़िया* अर्थात् एक विशिष्ट प्रकार के घरेलू शराब को संरक्षित करने हेतु किया जाता है। यह घड़े की आकृति का होता है। मुख बड़ा और शेष भाग गोल और फैला हुआ। इसमें ढक्कन नहीं होता। इसीलिए सूखी घास से इसके मुँह को लपेटकर ढक दिया जाता है।
- टेकलि: यह छोटे आकार का कलश ही है। इसमें चाय श्रमिक जंगलों में पाए जाने वाले विविध प्रकार के फल जैसे- आम, जलफाई, इमली, अमड़ा आदि को सुखा कर संरक्षित करके रखते हैं ताकि बाद में भी इसका सेवन किया जा सके। यह एक तरह से आचार की बरनी का काम करता है।
- हाँडी/ हाँड़ी: यह अन्य समाज में व्यवहृत हाँडी की ही तरह होती है। आमतौर पर इसमें खाद्य सामग्री को पकाया जाता है। इसका आकार बड़ा, गोल तथा चिपटा होता है।
- टिकलि: यह सुराही के आकर का होता है। गर्दन पतली और लंबी तथा निचला भाग लोटे की आकृति का होता है। चाय जनगोष्ठी के लोग इस पात्र का व्यवहार ताड़ी अथवा अन्य नशीले द्रव्यों को संरक्षित करने हेतु करते हैं।
- चिलुम: चिलुम का तात्पर्य चिलम से है। भाँग, गाँजा आदि नशीले पदार्थों के सेवन के लिए यह उपयोगी है।

चाय जनगोष्ठी में कच्ची मिट्टी से निर्मित पात्रों को अत्यंत शुभ माना जाता है। इसीलिए पर्व-त्योहारों तथा मांगलिक अनुष्ठानों में देवी-देवताओं को भोग लगाने के लिए कच्ची मिट्टी से निर्मित पात्रों का अधिकाधिक उपयोग दृष्टव्य है। इन पात्रों को चाय जनगोष्ठी में 'मला' कहा जाता है। इसके अतिरिक्त कच्ची मिट्टी से निर्मित दीपक का भी इस समाज में प्रचलन देखा जाता है। चाय श्रमिक शिकार के बेहद शौक़ीन होते हैं। ये मिट्टी से कंचे बनाकर गुलेल की सहायता से पक्षियों का शिकार करते हैं। चाय श्रमिक समाज में मिट्टी के इन कंचों के लिए 'गरागुटी' शब्द का प्रचलन है। पूजा-पाठ में देवी-देवताओं, तंत्र सिद्धि हेतु भूत-प्रेत आदि की प्रतिमा बनाकर अत्यंत श्रद्धापूर्वक चाय श्रमिक अपने आराध्य का वंदन करते हैं। इसके लिए *पथार माटी* यानी खेतों से लाल, सफेद मिट्टी का उपयोग किया जाता है। प्रारंभ में छोटी-छोटी मूर्तियाँ गढ़ी जाती थीं। आगे चलकर इस कला को और अधिक बढ़ावा तब मिला जब इसी समुदाय के कुछ लोग इससे पेशेवर रूप में जुड़ गये। घास और पुआल से ढाँचा तैयार कर उसमें मिट्टी का लेप लगाकर परंपरागत रूप से इष्टदेव की प्रतिमाएँ गढ़ी जाने लगीं। अतः चाय जनगोष्ठी के आम जनमानस में मिट्टी से निर्मित विभिन्न शिल्पों के माध्यम से चाय श्रमिकों के कलात्मक सौंदर्य की अभिव्यक्ति मिलती है। आज भी मिट्टी से विविध शिल्पों के निर्माण तथा उसके व्यवहार के कारण ही इनकी जीवंतता और प्रासंगिकता बरकरार है। चाय श्रमिकों ने अलग-अलग भूमि से आकर असम की संस्कृति एवं आब-ओ-हवा के अनुकूल स्वयं को ढाल तो लिया लेकिन इनकी कलात्मक शिल्पों के रूप और आकार में पर्याप्त बदलाव आ गया। कुछ कलाएँ तो विलुप्त हो गयीं तथा कुछ अवशेष रूप में आज मौजूद हैं।

* *बाँस-बेंत और काष्ठ कला*

काठ, बाँस तथा अन्य वनस्पतियों से निर्मित शिल्प हस्तकला के ही प्रकार हैं। इन शिल्पों के निर्माण में अत्यधिक समय लगता है तथा ये अत्यंत श्रम साध्य होते हैं। भारत के विभिन्न राज्यों में काठ, बाँस, पेड़ों के छिलके आदि से बनी अनेक लोक कलाएँ आकर्षण का केंद्र होती हैं। विशेषकर असम में वनस्पतियों के छिलके, रेशे, बाँस और *बेंत* (पूर्वोत्तर की एक विशेष वनस्पति) तथा पत्तियों से विभिन्न व्यवहारोपयोगी तथा साज-सज्जा के शिल्प बनाये जाते हैं। यही कारण है कि असम की भिन्न जातियों और आदिवासी समाज द्वारा निर्मित इन लोक कलाओं को संपूर्ण भारतवर्ष के अलावा विदेशी बाजारों में भी स्थान प्राप्त है। इस कला के क्षेत्र में असम की चाय जनगोष्ठी की भूमिका कोई कम नहीं है। काठ-बाँस से निर्मित वाद्ययंत्र, औजार, आभूषण आदि इस समाज में असम आने के पूर्व से ही प्रचलित थे। परंतु असम आने के पश्चात यहाँ की संस्कृति और

कला का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से चाय जनगोष्ठी की कला पर दृष्टिगोचर होता है। चाय बागानों में काम करते हुए चाय श्रमिक चिलचिलाती धूप से बचाव के लिए बाँस की बनी 'जापि' का व्यवहार करते हैं जो मूल रूप से असमिया संस्कृति का प्रतीक है। इसी तरह बहुत से असमिया लोक शिल्पों का प्रभाव और उपयोग चाय जनगोष्ठी में दृष्टव्य है। वर्तमान चाय श्रमिकों के समाज में काठ-बाँस और बेंत आदि से निर्मित व्यवहारजन्य विविध लोक कलाओं का विवरण यहाँ प्रस्तुत है-

चाय जनगोष्ठी में सीप, घोंघा आदि में चूना रखना, बाँस का *चोंगा* बनाकर उसमें पानी रखना, बाँस में ही विभिन्न खाद्य सामग्रियों को पकाना, खाद्य सामग्री संरक्षित रखना आदि का आज भी प्रचलन है। हाँ, यह बात भी अवश्य है कि इन श्रमिकों को अत्यंत अविकसित और पिछड़ा हुआ कहा जाता है। परंतु वास्तविकता तो यह है कि ये श्रमिक पर्यावरण संरक्षण और लोक संस्कृति के संवर्द्धन के प्रति काफी सचेत हैं। इस समाज में पत्थर के नुकीले हिस्सों तथा धातु शिल्प आदि में बाँस, काठ, बेंत आदि लगाकर अस्त्र तैयार किया जाता है। जैसे: दाउ, कटारी (चाकू) का व्यवहार दैनिक जीवन के अलावा चाय बागानों में पौधों की कटाई-छटाई के लिए दाव तथा तीर-धनुष आदि का उपयोग शिकार के लिए करते हैं। इसके अलावा चिड़ियों, जंगली जानवरों के शिकार के लिए फंदे बनाते हैं, मछलियों को पकड़ने के लिए बाँस के अग्रभाग से बंसी तथा रेशों से जाल तैयार करते हैं। चेप्पा, पंचा, खालाई, बाड़, झाँकाई, चोंगा, झुल्की, गालफाला, बंसीपूँही आदि इन चाय श्रमिकों के बाँस-बेंत, रेशों से की गयी महीन कारीगरी के प्रमाण हैं।

(चित्र संख्या 4.5: बाँस से निर्मित मछली पकड़ने का उपकरण)

प्रारंभिक समय अर्थात् असम आगमन के समय चाय जनगोष्ठी के लोक कलात्मक शिल्पों में काठ का प्रयोग तो था लेकिन बाँस-बेंत की कारीगरी में ये श्रमिकजन पारंगत नहीं थे। चाय बागानों में मजदूरी करने

के साथ इन लोगों ने अपनी कलात्मक शैली को और अधिक निखारा। असमिया संस्कृति के संस्पर्श से इनके शिल्पगत ज्ञान में समृद्धि हुई। इसके बाद हम देखते हैं कि चाय श्रमिक जेंगू पत्ते को बाँस या बेंत में बाँधकर घर की छावनी अथवा चहारदीवारी तैयार करते हैं। इसके अलावा बाँस और झाँपी पत्ते से 'जापि' तैयार कर चाय बागानों में धूप से बचाव करते हैं। इसके अलावा इनके दैनिक क्रियाकलापों से संबद्ध सामग्रियों पर ग़ौर किया जाए तो अधिकांश चीजें या तो पूर्णतः बाँस से निर्मित होती हैं अथवा आंशिक रूप से उसमें काठ, बाँस और बेंत का व्यवहार किया जाता है। इसका कारण है असम में पर्याप्त मात्रा में तथा किफायती दरों पर बाँस का उपलब्ध होना। चाय श्रमिकों की बस्ती में बाँस की रोपाई भी की जाती है। अतः अधिकाधिक शिल्पों की निर्मिती में बाँस का उपयोग वाजिब है। बाँस को पतले आकार में छिलकर उससे निर्मित शिल्प जैसे: फटकन हेतु डाला, दन, चलनी, डेलि, झाँकै/ झाकोई, खालोई, पिंजरा, खालाई, जुलकी खंका, चेप्पा, गालफाला, मूढ़ा, लाठी, खराई बाड़, ढ़ौम, टोकड़ी, टोपा/ टूपा (चाय की पत्ती तोड़कर डालने के लिए), मेड़ानि, कीट-पतंगों को मारने के लिए चिपटा औजार, बेढ़ा अथवा बेर (घर की सीमा के घेराव के लिए), झापना (गेट), चांग, टूचु पूजा के चौड़ल, भार, धूकनी, फूँकनी (चूल्हे को फूँकने के लिए) आदि चाय श्रमिकों के जीवन के कठिन प्रतीत होने वाले कार्यों को सरल बनाने के साधन हैं। आज भी कुछ चाय श्रमिक बागानों में काम करने के लिए अपने साथ बाँस के ही *चोंगे* में पानी तथा भूने हुए चावल (मूढ़ी) लेकर जाते हैं। श्रम के दौरान बाँस में रखे हुए जल की शीतलता इन्हें तृप्ति देती है। जल के अतिरिक्त देशी शराब को भी ये बाँस में रखते हैं।

बहरहाल, चाय उद्योग से दिन-रात जुड़े रहने के बावजूद चाय जनगोष्ठी के सामान्य जनजीवन में धैर्य, अत्यधिक श्रम और बारीकी से निर्मित इन शिल्प कलाओं की अधिकता इनकी कलात्मक विविधता, विशिष्टता तथा समृद्धि के सूचक हैं। असम की कला, संस्कृति और परिवेश के अनुकूल बाँस-बेंत की कारीगरी में इन चाय श्रमिकों की कार्यकुशलता एवं तत्परता ही इनकी लोक कला की परिधि को और अधिक विस्तार देते हैं। प्रकृति प्रदत्त सामग्रियों से बनाये गये तमाम शिल्प कलाओं का आज भी इस श्रमिक समाज में प्रासंगिक होना इन्हें 'इको फ्रेंडली' सिद्ध करता है।

* *धातुकला*

धातुकला को लोक शिल्पों का सर्वाधिक विकसित चरण कह सकते हैं। धातुकला का विकास कहीं न कहीं विभिन्न शिल्पों के स्थायित्व को कायम करने के उद्देश्य से हुआ। कारण कि मिट्टी, काठ, बाँस आदि से

बनाये गये शिल्प उतने टिकाउ नहीं होते हैं। वरन् तनिक असावधानी या वर्षा आदि से नष्ट हो जाते हैं। इनके स्थान पर धातुओं से निर्मित दैनिक व्यवहार के शिल्प अधिक कारगर सिद्ध होते हैं। इनमें प्रमुख रूप से तांबा, पीतल, लौह, स्टील, सोना, चाँदी, काँसा आदि धातुओं का इस्तेमाल होता है। धातु से निर्मित कलात्मक वस्तुओं में रसोई के बर्तन, आभूषण, औजार तथा वाद्ययंत्र आदि को देखा जा सकता है। शास्त्रों में इन धातुओं के औषधीय गुणों का उल्लेख मिलता है। विशेषकर रसोई के बर्तनों के संदर्भ में यह वैज्ञानिक मत है कि इनमें पकायी गयी खाद्य सामग्री का सेवन स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। धातुशिल्प के क्षेत्र में चाय जनगोष्ठी अत्यंत समृद्ध समाज है। असम की अन्य जातिगत संस्कृति की तरह इनमें भी शिकार के लिए लोहे के औजारों तथा काँसे के बर्तनों का प्रचलन है। इस बात का पहले ही संकेत मिल चुका है कि भारत के भिन्न राज्यों से आये ये चाय श्रमिक शिकार में अधिक रूचि रखते हैं। ऐसे में असम आने के दौरान ये अपने साथ कुछ औजार लेकर आये। परवर्ती समय में इस समाज में परस्पर जातिगत विशिष्टताओं के सम्मिश्रण से इन औजारों में भी समृद्धि हुई है तथा कुछ का लोप भी हुआ है। चाय जनगोष्ठी के काँवार/ कमार या काँहार जाति के लोग धातु शिल्प के निर्माण से जुड़े होते हैं। चाय श्रमिक इन धातु निर्मित औजारों का उपयोग शिकार के अतिरिक्त चाय बागानों तथा खेती-बाड़ी के लिए करते हैं। चाय जनगोष्ठी के श्रमिक चाय उद्योगों में काम करने के अलावा खेती-बाड़ी भी करते हैं परन्तु इस समाज के साँउरा तथा भूमिज आदिवासी लोग विशेष रूप से शिकार से संबद्ध हैं। चाय जनगोष्ठी में धातु से निर्मित शिकार-औजारों में जाँठि, त्रिशूल, तीर-धनुष, लोहे की लाठी, धुर्मुस, फार्सा आदि प्रमुख हैं। खाद्य सामग्री को पीसकर महीन बनाने के लिए पत्थर से बने जाँते, शिलनड़ी, पिठापतिया आदि भी इस समाज में व्यवहृत होते हैं।

चाय बागानों में बड़े-बड़े पेड़ों की कटाई के लिए फां, कंड़ (कुदाल), काटरी (छुरी), दाउ, भूजालि दाउ, चिप्रांग, डिगार, बंठि/ बंइठी (पहसूल) आदि का दैनिक व्यवहार होता है। चाय बागानों में मिट्टी की उर्वरता को बेहतर बनाने के लिए समय-समय पर खनन किया जाता है। इसके लिए चाय श्रमिक फांकड़ या काँटाकड़ का व्यवहार करते हैं। यह औजार खेती-बाड़ी में भी उपयोगी है। काँसे-पीतल से बने शिल्पों में प्रमुखतः हैं- रसोई के बर्तन जैसे: थाल (थाली), बाटी, घटि (लोटा), घाग्रा या गागरा (गगरी), बटुवा अथवा बटलोई, चाटू अथवा हेता (खाना परोसने के लिए बड़ी चम्मच) आदि। इन बर्तनों की अलग-अलग किस्में हैं। यथा: थालियों में फूल काटा थाल, पातला थाल; लोटा- बहलमुखी घटि, सटी घटि, घेंसा, सूबू घटि; बाटी- सुनुबाटी, गाड़हा बाटी, फूल बाटी, जाम्बा बाटी, टांगा बाटी, पियाला, डूभा आदि। इस सामाज में आज भी पीतल का तसला

और काँसे की ढिबरी/डिबरी प्रचलन में है। इसके अतिरिक्त चाय जनगोष्ठी में एक और विशिष्ट प्रथा है यह कि बड़े-बुजुर्गों अथवा गुरु के आगमन पर काँसे की थाली में उनका पैर पखारकर आशीर्वाद लेते हैं। ऐसी मान्यता है कि इससे घर-परिवार की सुख-शांति, संपन्नता बनी रहती है तथा वंश-वृद्धि होती है।

चाय जनगोष्ठी में धातुकला के शिल्पों में विविध आभूषण भी उल्लेखनीय हैं। इस समाज के स्त्री और पुरुष दोनों ही वर्गों में सौंदर्यवर्द्धन हेतु आभूषणों का प्रचलन है। शरीर के विविध अंगों की साज-सज्जा के लिए प्रचुर मात्रा में अलंकारों का होना वास्तव में चाय श्रमिक समाज में धातुकला की समृद्धि का सूचक है। इस समाज में प्रचलित इन आभूषणों में प्रमुख हैं- सिकिमाला अथवा चिकिमाला, तंगम, चंद्रहार, गँड़माला, हाँसलि, माद्लि, रसूनमाला, रसूनमाद्लि तथा कर्णाभूषणों में- केरू, लंकेरू, बटलकेरू, काठकेरू, कानफूल, झूम्का, कान्चि, कानतड़का, कानझूलका, पागड़ा आदि प्रमुख हैं। चाय जनगोष्ठी की महिलाएँ अपने केशों को सँवारने तथा उसके सौंदर्यवर्धन हेतु अनेक आभूषण लगाती हैं। ऐसे आभूषणों में छिटापाटी अथवा सिति-पाति अत्यंत लोकप्रिय है। इसके अतिरिक्त किलिप, रेरेबप, पानपात, बूँटकाँटा, चेंगाकाँटा, खंचअ आदि बालों की साज-सज्जा के अलंकार हैं। साँउरा जनजाति में प्रमुखतः प्रचलित किलिप और रेरेबप बालों को व्यवस्थित रखने हेतु सबसे पसंदीदा आभूषण है। इसके अतिरिक्त हाथ के आभूषणों में चूड़ी, शंखचूड़ी, लहाचूड़ी, बाला, कर्थारिया, चूड़ला आदि तथा गड़मल, पंयरी, बाँक, काँचार, पायल आदि पैर के आभूषण हैं।

ध्यातव्य है कि चाय जनगोष्ठी में प्रचलित ये विशिष्ट आभूषण इस समाज के जातीय कला-समृद्धि को दर्शाते हैं। इनके अधिकतर आभूषण चाँदी अथवा तांबे और चाँदी के मिश्रण से बने होते हैं। इससे इनकी आर्थिक स्थिति का भी पता चलता है क्योंकि जो सोने के अलंकार बनाने सक्षम नहीं हैं वे ही लोग अधिकतर चाँदी में तांबे अथवा पीतल को मिश्रित कर गहने बनवाते हैं ताकि उसमें स्वर्ण-सी आभा प्रतीत हो। धातुकला का शिल्पगत सौंदर्य वाद्ययंत्रों में भी दृष्टव्य है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि चाय श्रमिकों की आत्मा संगीत से अनुप्राणित है। गीत-संगीत की लय, मादकता, राग आदि इनके मन को आप्लावित करते हैं। इस बात की पुष्टि चाय जनगोष्ठी में प्रचलित लोकगीतों में लोकवाद्यों के भरपूर प्रयोग से हो जाती है। प्रायः सौ वर्ष पूर्व भिन्न प्रांतों से असम आये इन मजदूरों ने अपने लोक सांस्कृतिक वाद्यों के जरिये अपनी अनुभूतियों को लयबद्ध किया। इस समाज में ढोल, मादल, ढांक, ढुलकी, घंटा, शंख, चिंगा, नागरा (नगाड़ा) आदि अनेक लोकवाद्य हैं जिसके ताल पर ये श्रमिकजन अपने जीवन की तमाम विसंगतियों के बावजूद आनंदपूर्वक झूमते हैं। इन

लोकवाद्यों में कुछ बाँस, वृक्ष के छाल आदि में लोहे, पीतल के छोटे रिंग, तार, नट आदि लगाकर बनाये जाते हैं तो कुछ लोकवाद्य पूर्णतः धातु-निर्मित ही होते हैं। उदहारण के तौर पर ढोल, मादल आदि में बहुत कम धातुकार्य है परंतु चांगों, चिंगा, झाँझ, घंटा, घुँघरू आदि धातुनिर्मित सांस्कृतिक वाद्य हैं।

* *नृत्य कला*

नृत्य कला प्रमुख रूप से प्रदर्शनकारी कला के अंतर्गत आती है। नृत्य प्रदर्शक अपनी आंगिक क्रियाओं व चेष्टाओं के माध्यम से विभिन्न भावों को प्रस्तुत करता है। नृत्य कला किसी भी जातिगत संस्कृति की पहचान होती है। जैसे खान-पान, वस्त्र, आभूषण, उत्सव आदि से किसी जातीय अस्मिता का पता चलता है ठीक उसी प्रकार लोक नृत्य के माध्यम से किसी भी जातीय अथवा जनजातीय समाज की विशिष्ट संस्कृति, विचारधारा और मूल्यों का बोध होता है। चाय जनगोष्ठी की संस्कृति का एक महत्वपूर्ण पक्ष है उनका लोक नृत्य 'झुमुर'। इस लोक नृत्य के अलावा चाय जनगोष्ठी में डमकच नृत्य, नटुवा नृत्य, काठिनाच, झांडा नाच, उड़िया, साउताल, पाइनका नाच आदि का कमोबेश प्रचलन है परंतु सर्वाधिक प्रसिद्धि झुमुर नृत्य को प्राप्त है। इस नृत्य कला के माध्यम से चाय मजदूर अपने जीवन की तमाम विसंगतियों, दुःख-तकलीफों के बीच आनंद का मार्ग ढूंढ लेते हैं। चाय जनगोष्ठी में प्रचलित 'झुमुर' केवल एक नृत्य कला न होकर गीत-नृत्य की शैली है। इस समाज में 'झुमुर' के लिए *झुमर* और *झुमइर* ये दो शब्द भी पर्याय के रूप में प्रचलित हैं। कुछ लोग *झुमुर* शब्द की उत्पत्ति को हिंदी भाषा के 'झूमना' के संदर्भ में ग्रहण करते हैं। आनंद में मग्न होकर झूमना। इसीलिए इस प्रसिद्ध सांस्कृतिक लोक नृत्य को *'झुमुर'* अथवा *'झूमर'* नृत्य की संज्ञा दी गयी है। चाय जनगोष्ठी में *झुमुर* के लिए *झुमइर* शब्द का भी प्रयोग देखा जाता है। अर्थ की दृष्टि से *झुमइर* शब्द को अधिक मान्यता प्राप्त है। झुमइर शब्द 'झुम' और 'मइर' इन दो शब्दों के योग से बना है। 'झुम' का अर्थ है एकजुट होकर समूह में रहना। जैसे चाय जनगोष्ठी में कहते हैं 'झुम पाति आले' अर्थात् समूह में आया तथा 'मइर' शब्द का तात्पर्य है- एक साथ हाथों में हाथ डालकर आनंद से नृत्य करना। इस तरह झुमुर नृत्य के दौरान सभी आपस में हाथ पकड़कर झूमते हैं।

वैसे तो चाय जनगोष्ठी में किसी भी आनंद और हर्ष के अवसर पर झुमुर नृत्य करते हैं परंतु पर्व-त्योहार तथा अन्य मांगलिक अवसरों पर झुमुर गीत गाने और नृत्य करने की विशेष परंपरा प्रचलित है। इस समाज के प्रसिद्ध जातीय उत्सव *करम* पर्व में झुमुर नृत्य-गीत के प्रति इनकी रूचि देखते ही बनती है। *करम कथा* की समाप्ति के बाद बच्चे, बुजुर्ग समेत युवा स्त्री-पुरुष सभी झुमुर गीत गाते हुए नृत्य करते हैं। इस श्रमिक समाज के

लगभग हर उम्र तथा वर्ग के पुरुष और महिलाओं द्वारा ढोल, मादल, नागरा, ताल आदि की धुन पर किया गया झुमुर नृत्य विशेष आकर्षण का केंद्र है। ढोल, मादल की आवाज सुनते ही इन श्रमिकों के पैर थिरकने लगते हैं। पुरुष सफेद धोती-शर्ट अथवा कुर्ता पहनते हैं तथा लाल गमछा गले में अथवा कमर में बाँधते हैं। और, महिलाएँ लाल किनारीदार सफेद साड़ी, हाथों में चूड़ियाँ, गले में आभूषण, बालों में गजरा आदि लगाकर झुमुर नृत्य की प्रस्तुति हेतु अपने मन में उत्साह और आनंद लिए होती हैं। इस बात की अभिव्यक्ति इनके झुमुर गीत में देख सकते हैं:

"ढ'ल-मादल सुनि निंद नाई म'र चँखे धनी

हामे आवलि धनी, नाचे आवलि धनी

सुनिके बाजाना।"[3]

चाय जनगोष्ठी में झुमुर गीत-नृत्य की सर्वाधिक प्रासंगिकता है। ये लोग बिना किसी भेदभाव के खुले मैदान में जीवन की तमाम कुंठाओं और वंचनाओं को भूलकर उन्मुक्त मन से झुमुर नृत्य करते हैं। पाँचवीं-छठी पीढ़ी से असम में निवास कर रहे इन चाय श्रमिकों में आपसी भिन्नताओं के बरअक्स प्रेम और समन्वय की ऐसी आकांक्षा है जो इनमें विषम परिस्थितियों में अदम्य उत्साह का संचार करती है। सुख की छाँव हो या दुःख की तपिश ये श्रमिकजन चाय बागानों के बीच स्तंभित शिरीष की भाँति अपने जीवन में अडिग रहकर आपसी सौहार्द और भाईचारे की भावना को प्रेषित करते हैं। इस झुमुर नृत्य के दौरान पुरुष अलग-अलग लोकवाद्यों को बजाते हुए झूम-झूम कर गीत गाते हैं। और, महिलाएँ एक-दूसरे का हाथ पकड़कर क्रमबद्ध रूप से एक कतार में नृत्य करती हैं। इस नृत्य के प्रदर्शन में समन्वय, सामूहिकता, एकता तथा निज-पर के बंधन से मुक्त होकर मानव प्रेम का भाव निहित है। एक-दूसरे का हाथ पकड़कर, कंधे से कंधा मिलाकर नृत्य करना संघर्ष में भी संगठित रहने के भाव को दर्शाता है। इस नृत्य-शैली के माध्यम से चाय श्रमिक समाज की सांस्कृतिक छवि, कर्म के प्रति प्रतिबद्धतता, प्रेम, लगन, निष्ठा और आनंदाभिव्यक्ति मुखरित होती है। आजकल झुमुर नृत्य को मंच पर भी प्रस्तुत किया जाने लगा है। ऐसे समारोहों में केवल चाय जनगोष्ठी के लोग ही नहीं अपितु अन्य समाज के लोग भी शामिल होते हैं। असम के विभिन्न स्थानों में झुमुर प्रतियोगिता का आयोजन इस नृत्य कला को अन्य समाज में लोकप्रिय बनाता है लेकिन झुमुर का प्रदर्शन वास्तव में किसी खुले स्थान पर अथवा चाय बागान के बीच प्रकृति के सान्निध्य में किया जाता है। इसके अतिरिक्त झुमुर गीतों में भी प्रकृति के प्रति अगाध

प्रेम और आस्था के भाव की अभिव्यक्ति मिलती है। यही कारण है कि झुमुर लोकगीत-नृत्य की प्रस्तुति के दौरान झुमुर के शाब्दिक अर्थ की भी स्पष्ट प्रतीति हो जाती है।

* *चित्रकला*

चित्रकला अपने में हजारों शब्दों को समेटे हुए मूक दृश्य होती है जो निःशब्द अभिव्यक्ति करती है। चित्रकला के दृश्य हमारे मनोभावों तथा विचारों के अलावा समाज में प्रचलित मिथक और लोक परंपराओं का भी वहन करते हैं। पाषाण काल से ही हमें चित्रकला की उपस्थिति के प्रमाण मिलते हैं। पर्वतों की गुफाओं, चट्टानों आदि में शिकार करते मानव, विभिन्न अस्त्र-शस्त्र, पशु-पक्षियों आदि का चित्र अंकित होना वस्तुतः उस युग की जीवन-शैली और विचारों को दर्शाते हैं। अर्थात् चित्रकला दृश्य के माध्यम से एक पूरे युग को अपने में समाहित किये हुए समय के साथ परिष्कृत तथा संवर्धित होती रहती है। विशेषकर भारतीय संदर्भ में चित्रकला के अवशेष अजंता-एलोरा की गुफाओं, हड़प्पा-मोहनजोदड़ो आदि में देख सकते हैं। इन दृश्यों में की गयी बारीक कारीगरी से भारतीय सभ्यता और संस्कृति की जड़ों को समझा जा सकता है। संपूर्ण भारत के विभिन्न प्रांतीय समाज और संस्कृति के अनुकूल चित्रकला के विशेष नमूने प्रचलित हैं। जैसे: मिथिला चित्रकला, मधुबनी चित्रकला, उड़ीसा पटचित्र, गोंड कला, वर्ली चित्रकला, फाड़ चित्र आदि। ठीक इसी प्रकार असम की चाय जनगोष्ठी में प्रचलित चित्रकला भी उतनी ही विशिष्ट और समृद्ध है। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि ये चाय श्रमिक आज से लगभग सौ-डेढ़ सौ साल पूर्व भारत के भिन्न क्षेत्रों से आव्रजित हुए। अतः रोजगार के उद्देश्य से आये इन मजदूरों के पास अपना कहने के लिए मातृभूमि की महक और संस्कृति की स्मृति के अतिरिक्त कुछ भी न था। समय के साथ इन लोगों ने वाचिक रूप में प्रचलित धार्मिक ज्ञान, धार्मिक कथाओं तथा गीतों को भोजपत्र अथवा कमल के पत्तों पर चित्रात्मक शैली में संरक्षित किया। यह प्रचलन आज भी चाय श्रमिक वर्ग के नाना समुदायों द्वारा आयोजित विभिन्न पारंपरिक अनुष्ठानों में मौजूद है। इसके अतिरिक्त चाय जनगोष्ठी में शरीर के विभिन्न अंगों में चित्र अंकित करवाने से लेकर घर की कच्ची दीवारों, दरवाजों, पूजा-स्थल आदि सभी स्थानों में चित्रांकन की प्राचीन परंपरा है। अलग-अलग रंगों के सम्मिश्रण से घर के 'बेर' (बाँस की दीवार जिस पर गोबर-मिटटी से पुताई की जाती है) पर वृक्ष, फूल, पक्षी आदि के अलावा थापों का अंकन इन श्रमिकों का प्रकृति के प्रति अगाध प्रेम का प्रतीक है।

चाय जनगोष्ठी के वैवाहिक अनुष्ठानों में चित्रकला के नवीन प्रतिमान दृष्टव्य हैं। विवाह मंडप अर्थात् 'मड़वा' में लाल, नीले, सफेद, पीले रंग से बनी विभिन्न प्रकार की पारंपरिक आकृतियाँ मांगलिक अनुष्ठान की शोभा बढ़ाती हैं। विशेषकर बिहार, झारखंड, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में विवाह संस्कार में 'कोहबर' की रस्म अदा की जाती है। असम की चाय जनगोष्ठी में थोड़ी भिन्नता के साथ इस रीति का प्रचलन है। चाय श्रमिक समाज में इस रीति को 'कहबर' कहा जाता है। विवाह के पश्चात् वर और वधू को किसी एक कमरे में या पूजन स्थल पर बैठाया जाता है। उस कमरे के बाहर की दीवार पर बहन कहबर अंकित करती है। वास्तव में चाय जनगोष्ठी में प्रचलित इस लोक परंपरा के पीछे ऐसी मान्यता है कि दीवार पर चित्रित कहबर में जिस नर-नारी की छवि अंकित की जाती है वे राधा-कृष्ण, बेउला-लाखिंदर, राम-सीता, शिव-पार्वती अथवा किन्नर- किन्नरी के प्रतीक होते हैं। पारंपरिक कहबर की रस्म के माध्यम से नवविवाहित दंपति के मंगलमय और सुखद गृहस्थ जीवन की कामना की जाती है। कहबर की रस्म के समय गाये जाने वाले लोकगीत में इस बात का उल्लेख कुछ इस प्रकार है-

"कन तोर गाढ़ल झिलिमिली रे माड़वा
कने तोर लिखले रामचंद्र रे कहबर
बहनाई तोर गाढ़ल झिलिमिली रे माड़वा
दीदी तोर लिखलाई रामचंद्र रे कहबर।।"[4]

उपर्युक्त गीत की पंक्तियों में अनुष्ठान के दौरान विवाह संस्कार में कहबर प्रथा की प्रासंगिकता को रेखांकित किया गया है। वर-वधू को विशेषकर राम और सीता की जोड़ी के रूप में देखा जाता है। यह नियत लोक परंपरा है कि विवाह के अवसर पर *मड़वा* (विवाह मंडप) को छोटी बहन सजाती है तथा बड़ी बहन चावल के चूर्ण और सिंदूर से कहबर अंकित करती है।

इसी तरह चाय जनगोष्ठी के अन्य पर्व-त्योहारों जैसे- करम पर्व, दुर्गा पूजा, लखी पूजा आदि में चित्रकला के माध्यम इनके संस्कृति की विशिष्टता का स्पष्ट आभास मिलता है। दुर्गा पूजा में घर के मुख्य द्वार एवं बाँस से बनी घर की चहारदीवारी में सफेद, लाल और काले रंग से गोल *टीका* (तिलक) करने की विशेष परंपरा है। ऐसा माँ दुर्गा के स्वागत में किया जाता है। अन्य मांगलिक अनुष्ठानों में भी दीवारों पर, पूजा के कलश तथा वेदी पर इसी तरह से तिलक लगाते हैं। इसे चाय जनगोष्ठी में 'टिका-फँका' कहते हैं। ऐसी लोक मान्यता है कि राधा तथा रुक्मिणी इसी प्रकार से तीन रंगों से चित्रांकित कलश में पानी भरकर लाती थीं जिससे श्रीकृष्ण

आकर्षित हुए थे। यह भी किवदंती है कि बाल्य अवस्था में कृष्ण ऐसे ही तीन रंगों से अंकित माखन की मटकी की ओर सहज आकर्षित होते थे। देवी मनसा, देवी काली तथा अन्य अवसरों पर भी देवी-देवताओं के आह्वान हेतु इसी तरह से लाल, काले और सफेद रंग से तिलक किये गये कलश का उपयोग अनिवार्य है। आश्विन महीने में मनाये जाने वाले लखी पूजा में चाय श्रमिक चावल के चूर्ण में पानी मिलाकर घर की फर्श पर 'अल्पना' रंगोली अंकित करते हैं। देवी के पदचिह्नों को मुख्य द्वार पर अंकित किया जाता है। यह मान्यता प्रचलित है कि इससे धन-धान्य की देवी लखी (अन्नपूर्णा) अत्यंत प्रसन्न होती हैं जिससे घर-परिवार हमेशा अन्न से समृद्ध रहता है। इसके अतिरिक्त चाय जनगोष्ठी की महिलाएँ गोबर-मिट्टी से पूरे घर की पुताई कर उसकी दीवार पर शंख, कमल, हंस, विभिन्न प्रकार के फूल, पौधे आदि को चित्रांकित करती हैं। इसीलिए चाय श्रमिकों का घर कच्चा होने के बावजूद सहज ही किसी भी व्यक्ति को आकर्षित करता है।

चित्रकला की विभिन्न शैलियों में एक विशिष्ट शैली 'गोदना' भी है। इसमें शरीर के अलग-अलग अंगों पर तमाम तरह की आकृति बनवायी जाती है। चित्रकला की यह शैली बहुत प्राचीन है। विशेषकर आदिवासी समुदायों में शुरू से ही इसका प्रचलन अधिक रहा है। वर्तमान समय में गोदना अर्थात् 'टैटू' फैशन का अभिन्न और आकर्षक अंग है। इस कला ने युवा वर्ग को अत्यधिक प्रभावित किया है। चाय जनगोष्ठी में इसे ही 'खदा' कहते हैं। *खदा* शब्द से ही इस बात का बोध हो जाता है कि इसमें शरीर के विभिन्न अंगों पर किसी नुकीले औजार अथवा सुई, काँटे से खोदकर चित्रांकित किया जाता है। यह रीति चाय जनगोष्ठी की संस्कृति का अनिवार्य हिस्सा है। हालाँकि चाय श्रमिकों के समाज के पुरुष और महिलाएँ सभी *खदा* अंकित करवाते हैं परंतु स्त्रियों के लिए इसे अंकित करवाना अनिवार्य है। इसके पीछे यह लोक मान्यता जुड़ी हुई है कि मृत्यु के पश्चात् शरीर पर *खदा* अंकित न हो तो यम देव दंड देते हैं और वह इंसान नर्क का भागी बनता है। यह बात बड़ी विचित्र है कि ऐसी लोक मान्यताएँ केवल महिलाओं के लिए मान्य हैं। चाय जनगोष्ठी में विवाहित महिलाएँ किसी चित्र को अंकित करवाने के अतिरिक्त अपने पति का नाम लिखवाती हैं। ऐसा उनके दांपत्य जीवन को जन्म-जन्मांतर तक सुदृढ़ करने के लिए किया जाता है। कुलमिलाकर इस *खदा* के प्रचलन के साथ भविष्य को लेकर कई धारणाएँ जुड़ी हुई हैं। इसी कारण शरीर के विभिन्न अंगों जैसे नाक, कान, कपोल, गर्दन, घुटना, हाथ, पैर, सीना आदि पर चित्रांकन की यह परंपरा आज भी प्रचलित है। कुछ लोग यह भी मानते हैं कि नारी-मन में अपने शरीर को लेकर सौंदर्यवर्द्धक भावों के उद्गार होने पर वे इस प्रथा की ओर आकर्षिक हुईं जिसका एक महत्वपूर्ण पक्ष आर्थिक तंगी के कारण आभूषणों के क्रय की असमर्थता भी है। इसी चलते *खदा*

जैसी पारंपरिक प्रथा ने अपना उत्कर्ष पाया तथा महिलाएँ अपने अंगों पर आभूषण की भाँति गोदना या टैटू बनवाने लगीं। इसका प्रचलन चाय जनगोष्ठी में तो है ही अन्य जाति-जनजाति अथवा आदिवासी समुदायों में भी इस प्रथा की प्रत्यक्ष उपस्थिति है।

वस्त्रकला के क्षेत्र में भी चाय जनगोष्ठी की महिलाएँ तरह-तरह की चित्रकारी करती हैं। रंग-बिरंगे धागों से फूल की कढ़ाई-बुनाई करती हैं। ये वस्त्र इनकी जातीय संस्कृति की विशिष्टता को रेखांकित करते हैं। पर्व-त्योहारों में मेहंदी-महावर आदि से की गयी चित्रकारी चाय जनगोष्ठी की महिलाओं के श्रमिक जीवन से इतर कलात्मक व्यक्तित्व को दर्शाते हैं।

उपर्युक्त विवेचनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चाय जनगोष्ठी की लोक कलाएँ सृजनात्मक सौंदर्य की प्रतिमान हैं। वे अपने आप में विशिष्ट और अद्वितीय हैं। ये लोक कलाएँ समयानुरूप चाय जनगोष्ठी की जीवन शैली में आये परिवर्तनों को दर्शाती हैं। चाय बागानों में कठोर परिश्रम के अलावा दैनंदिन व्यवहारजन्य साधनों के सृजन की उत्कृष्टता और समृद्धि इन श्रमिकों के कलात्मक कौशल की पहचान है। ये पारंपरिक लोक कलाएँ असम के परिवेश में आकर प्रभावित तथा परिष्कृत हुई हैं। वर्तमान समय में आवश्यकता है ऐसे कलात्मक हस्त शिल्प को सहेजने की, संरक्षण की अन्यथा चाय जनगोष्ठी की विशिष्टता के ये प्रमाण समय के प्रवाह में विलुप्त हो जाएंगे।

(चित्र संख्या 4.6: चाय श्रमिक की कच्ची झोपड़ी पर अंकित 'टिका- फँका')

(चित्र संख्या 4.7: गृह बाँधा पूजा के दौरान अंकित अल्पना)

(चित्र संख्या 4.8: चाय जनगोष्ठी में प्रचलित आभूषण)

(चित्र संख्या 4.9: धातु-निर्मित घड़े 'बटुवा')

(चित्र संख्या 4.10: घरेलू उपयोग के बर्तन 'बाटी')

(चित्र संख्या 4.11: 'ढांक')

(चित्र संख्या 4.12: 'मादल')

(चित्र संख्या 4.13: 'कोया' समुदाय की पारंपरिक वेश-भूषा)

(चित्र संख्या 4.14: जातीय नृत्य 'झुमुर') [साभार इंटरनेट]

(चित्र संख्या 4.15: विभिन्न औजार)

संदर्भ सूची:

1. बद्री नारायण, लोक संस्कृति और इतिहास, पृष्ठ संख्या. 92
2. https://youtu.be/KJzRGq-zEeU (दिनांक: 16.06.2022, प्रातः 11.32 बजे)
3. शुकदेव अधिकारी, चाह जन गोष्ठीर लोकगीत लोक परंपरा आरु उत्सवर रूपरेखा, पृष्ठ संख्या. 80
4. प्रकाश कुर्मी, झिलिमिलि माड़वा, पृष्ठ संख्या. 14